वैदिक संस्कृति की वैज्ञानिकता

(सार)

वेद

डॉ. भूप सिंह

ओ३म्

वैदिक संस्कृति की वैज्ञानिकता

(सार)

लेखक

आचार्य अग्निव्रत

प्रमुख, श्री वैदिक स्वस्ति पन्था न्यास

(संचालक वैदिक एवं आधुनिक भौतिकी शोध संस्थान)

सम्पादक

डॉ. मधुलिका आर्या एवं विशाल आर्य

उपप्राचार्या एवं प्राचार्य, वैदिक एवं आधुनिक भौतिकी शोध संस्थान

द वेद साइंस पब्लिकेशन

भीनमाल (राज.)

प्रथम संस्करण
वर्ष 2024

महर्षि दयानन्द २००वाँ जन्मदिवस, फाल्गुन कृष्ण १०/२०८०
05 मार्च 2024

मूल्य : ₹220/-

प्रकाशक : **द वेद साइंस पब्लिकेशन**
वेद विज्ञान मन्दिर, भागलभीम, भीनमाल
जिला - जालोर (राजस्थान) - 343029
वेबसाइट : www.thevedscience.com,
www.vaidicphysics.org
ईमेल : thevedscience@gmail.com
सम्पर्क सूत्र : 9530363300

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	पृ.सं.
1.	ईश्वर	5
2.	आत्मा	11
3.	वेद	21
4.	वर्ण–व्यवस्था	25
5.	धर्म	28
6.	पर्यावरण और अग्निहोत्र	31
7.	डार्विन का विकासवाद	34
8.	मनुष्य मांसाहारी या शाकाहारी ?	37
9.	ऊर्जा का शुद्धतम रूप	40
10.	कृषि	42
11.	हरित क्रान्ति	44
12.	गाय	46
13.	कृषि, पर्यावरण और वेद	48
14.	निजीकरण और वेद	50

15.	पूँजीवाद व साम्यवाद में समानता	53
16.	देशभक्ति	55
17.	विकास	57
18.	समृद्धि का सूत्र	59
19.	गुलाम कौन?	63
20.	वैज्ञानिक कौन?	65
21.	क्या विज्ञान बीमारियों को नियन्त्रित कर पायेगा?	67
22.	आर्यसमाज की आवश्यकता	74
23.	प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफ.डी.आई.)	78
24.	वैदिक अर्थशास्त्र व राजनीति	85
25.	शिक्षा	90
26.	हिंसा-अहिंसा	92
27.	योग का व्यवसायीकरण	94
28.	क्या आर्य बाहर से आये?	96
29.	गीता, कुम्भ और गाय	98
30.	फैशन	100

31.	तैंतीस करोड़ देवी–देवता	102
32.	विष द्वारा ऋषि हत्या	103
33.	कुछ मान्यताएँ— (क) अवतारवाद (ख) मूर्तिपूजा (ग) ग्रह–शान्ति (घ) पाप–माफी (ङ) प्राण–प्रतिष्ठा (च) भूत–प्रेत (छ) श्राद्ध–तर्पण (ज) शुभ–अशुभ मुहूर्त (झ) प्रार्थना (ञ) काँवड़ (ट) पुनर्जन्म (ठ) हस्तरेखा (ड) तन्त्र–मन्त्र (ढ) जादू–टोना (ण) नशाखोरी	106

❋ ❋ ❋ ❋ ❋

'**वैदिक संस्कृति की वैज्ञानिकता**' पुस्तक में जिन विषयों पर चर्चा की गई है, सारांश रूप में उन सबका संक्षिप्त विवरण रख देना उचित रहेगा, इसी बात को ध्यान में रखकर चर्चित विषयों में से कुछ विषयों को यहाँ साररूप में रखा जा रहा है।

विचार की दृष्टि से विश्व की जनसंख्या दो भागों में विभाजित है— आस्तिक और नास्तिक। वैदिक दर्शन आस्तिक दर्शन है। नास्तिक दर्शन का मूल विचार है कि केवल जड़ पदार्थ का ही अस्तित्व है, जड़ पदार्थ के अतिरिक्त किसी चेतन सत्ता का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। नास्तिक दर्शन की चार मूल मान्यताएँ हैं—

1. सभी रचनाएँ परमाणुओं के संयोग से अपने आप बन जाती हैं, कोई बनाने वाली अलग से चेतन सत्ता नहीं है।
2. चेतना परमाणुओं के संयोग का परिणाम है, संयोग बिगड़ जाने से चेतना लुप्त हो जाती है, चेतना का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है।
3. रचनाओं में भिन्नता बाहरी प्रभावों के कारण एक रचना के दूसरी रचना में रूपान्तरण के कारण है।
4. सभी रचनाएँ और उनका रूपान्तरण सदैव से है। रचनाओं का आरम्भ व अन्त नहीं है अर्थात् इस सृष्टि का अन्त व शुरुआत नहीं है अर्थात् कोई आरम्भ या अन्त करने वाला नहीं है।

नास्तिक व्यक्ति किसी आस्तिक विद्वान् या उनके धर्मग्रन्थों के प्रमाणों को मान्यता नहीं देता, इसलिए नास्तिक दर्शन की मूल मान्यताओं को गणित व विज्ञान की दृष्टि से देखना आवश्यक है—

1. पहली मान्यता है कि रचनाएँ अपने आप परमाणुओं के संयोग से

बनती हैं। यदि इसके मूल में जाएँ, तो वनस्पति व जीव जगत् की सभी रचनाओं का आधार कोशिकाएँ हैं। एक कोशिका के साधारण से साधारण प्रोटीन अणु में अनिवार्य रूप से कार्बन, नाइट्रोजन, ऑक्सीजन, हाइड्रोजन व गन्धक के परमाणु होते हैं और एक प्रोटीन के अणु में इन पाँच तत्त्वों के परमाणुओं की संख्या कम से कम 40,000 होती है। पाँच तत्त्वों के 40,000 परमाणुओं का एक विशेष क्रम में अपने आप जुड़कर एक कोशिका का प्रोटीन अणु बनाने की सम्भावना 10^{160} में एक है अर्थात् इस सम्भावना का मान $1/10^{160}$ है। अब इन पाँच तत्त्वों के परमाणु बिखरे पड़े हैं, तो ये सम्पर्क में तभी आयेंगे, जब इनमें हलचल होगी अर्थात् पदार्थ में स्पन्दन होगा। पदार्थ की कितनी मात्रा में स्पन्दन हो, जिससे प्रोटीन का एक अणु बन जाये ? तो पदार्थ की यह मात्रा ब्रह्माण्ड के कुल पदार्थ की मात्रा से लाखों गुणा अधिक बैठती है।

ब्रह्माण्ड का कुल पदार्थ 10^{55} कि.ग्रा. है। इसके साथ ही अपने आप पाँच तत्त्वों के परमाणुओं का प्रोटीन अणु बनाने में लगा समय 10^{243} वर्ष कैलकुलेट किया गया है। ब्रह्माण्ड की आयु 10^{17} सेकण्ड आँकते हैं। प्रोटीन अणु अमीनो अम्लों के मेल से बनता है। एक प्रोटीन अणु में इन अमीनो अम्लों को 10^{48} प्रकार से रखा जा सकता है और यह भी आवश्यक नहीं कि प्रोटीन अणु में रखे गये इन अमीनो अम्लों के सभी क्रम जीवनदायक हों, ये विष भी हो सकते हैं। इस प्रकार गणित के हिसाब से परमाणुओं का अपने आप विशेष क्रम में जुड़कर जीवनदायक प्रोटीन बनाकर कोशिका निर्माण करने की सम्भावना नगण्य है। जब प्रोटीन अणु अपने आप नहीं बन सकता, तो कोशिका, जिसमें कई प्रकार के प्रोटीन अणु होते हैं,

अपने आप कैसे बन जायेगी और कोशिका अपने आप नहीं बनी, तो रचना कैसे बनेगी?

भौतिकी के हिसाब से भी प्रोटीन अणु का अपने आप बनना सम्भव नहीं है, क्योंकि प्रोटीन अणु में विभिन्न परमाणु एक विशेष क्रम में हैं, तो यह परमाणुओं का क्रमबद्ध संघात हुआ। कोई भी क्रमबद्ध संघात उच्च ऊर्जा की स्थिति होती है। भौतिकी का सिद्धान्त है कि प्रत्येक संघात कम से कम ऊर्जा की स्थिति में रहना चाहता है, तो क्रमबद्ध स्थिति, जो उच्च ऊर्जा की स्थिति है, यह अपने आप नहीं बन सकती। रसायनशास्त्र की दृष्टि से भी संघात के लिए न केवल परमाणुओं में गति होनी चाहिए, बल्कि गति के साथ गति की विशेष दिशा भी अनिवार्य है। परमाणु जड़ हैं, तो किसी विशेष दिशा में गति करने का ज्ञान उनमें नहीं है, तो अपने आप रचना कैसे बनेगी? इस प्रकार गणित व विज्ञान की दृष्टि से यह सम्भव नहीं है कि रचना अपने आप बन जाये।

2. दूसरी मान्यता है— परमाणुओं के संयोग से चेतना पैदा होना। यहाँ यह बात तो सभी नास्तिकों को माननी पड़ती है कि जड़ और चेतन दो भिन्न वस्तुएँ हैं। यदि चेतन और जड़ को भिन्न नहीं मानेंगे, तो जीवित व्यक्ति और मुर्दा लाश (शव) में अन्तर कैसे करेंगे? नास्तिकों को यह भी मानना पड़ता है कि सभी परमाणु जड़ हैं। अब नास्तिक जब परमाणुओं के संघात के परिणामस्वरूप चेतना का पैदा होना मानता है, तो नास्तिक दर्शन व विज्ञान के मूलभूत सिद्धान्त— 'भाव का अभाव व अभाव से भाव का होना सम्भव नहीं है' का खण्डन करता है। सिद्धान्त के सामने किसी की कोई औकात नहीं

होती चाहे, चाहे वह कोई भी क्यों न हो। नास्तिक की यह बात कि परमाणुओं के संघात से चेतना पैदा हो जाती है, ठीक नहीं है, क्योंकि परमाणुओं में जड़ता होने के कारण किसी भी रूप में चेतना नहीं होती, तो संयोग से चेतना आना अभाव से भाव का होना हुआ, जो सिद्धान्त के विरुद्ध है।

3. तीसरी मान्यता कि रचनाओं में रूपान्तरण होता है, यह डार्विन का विकासवाद है। वैसे तो डार्विन के विकासवाद पर ढेर सारी आपत्तियाँ हैं, परन्तु विज्ञान की एक मूलभूत आपत्ति यह है कि डार्विन के विकासवाद में सरल रचना से जटिल रचना की तरफ जाते हैं। सरल रचना से जटिल की तरफ जायेंगे, तो अधिक और अधिक ऊर्जा की आवश्यकता पड़ेगी। भौतिकी का एन्ट्रॉपी का नियम कह रहा है कि ब्रह्माण्ड की एन्ट्रॉपी बढ़ रही है और एन्ट्रॉपी बढ़ने से ऊर्जा की उपलब्धता कम होती है। इसका मतलब हुआ रचनाएँ आरम्भ से भिन्न-भिन्न हैं, इनका एक-दूसरे में रूपान्तरण नहीं होता।

4. चौथी मान्यता कि रचनाएँ सदैव से हैं, इनका आरम्भ या अन्त नहीं है, यह भी ठीक नहीं हो सकती, क्योंकि एन्ट्रॉपी बढ़ने से ऊर्जा की उपलब्धता घटेगी, तो एक समय ऐसा भी आयेगा कि रचनाओं के बनने और टिके रहने की सम्भावना नहीं रहेगी। यह स्थिति अन्त या प्रलय होगी। अब अन्त उसी का होता है, जिसका आरम्भ हुआ हो, तो ब्रह्माण्ड का आरम्भ और अन्त है। सदैव से ऐसा ही है, यह मान्यता ठीक नहीं है।

इस प्रकार नास्तिक दर्शन की चारों मूलभूत मान्यताएँ विज्ञानसम्मत

नहीं हैं, तो नास्तिकता वैज्ञानिक दर्शन नहीं है। अब हम आस्तिक दर्शन की मान्यताओं की चर्चा कर लेते हैं।

* * * * *

1. ईश्वर—

विश्व में मुख्य रूप से तीन तरह के विचार चले आये हैं— अद्वैतवाद (केवल एक चेतन सत्ता है), भौतिकवाद (केवल पदार्थ का ही अस्तित्व है) और त्रैतवाद (तीन नित्य अस्तित्व हैं— एक सर्वव्यापक चेतन सत्ता, दूसरी एकदेशी चेतन सत्ता और तीसरा जड़ पदार्थ)। दो कारणों से त्रैतवाद का विचार ठीक मानना पड़ता है। पहला कारण वह मूल सिद्धान्त है, जिसके आधार पर सारा दर्शन व विज्ञान टिका हुआ है, वह सिद्धान्त है— भाव का अभाव नहीं होता और अभाव से भाव की उत्पत्ति नहीं होती। अंग्रेजी भाषा में कहें, तो—

"Something can not be reduced to nothing and can not be out of nothing."

विज्ञान में इसे 'लॉ ऑफ कंजर्वेशन' कहा है। केवल एक चेतन का अस्तित्व मानें, तो वास्तविक जगत् में जड़ का होना तभी सम्भव होगा, जब एकमात्र चेतन सत्ता का कुछ भाग जड़ बन जाये। इस अवस्था में चेतना का अभाव हो गया, जो सिद्धान्तविरुद्ध है। यदि केवल जड़ का अस्तित्व मानें, तो वास्तविक जगत् में दिखाई देने वाली चेतना जड़ से पैदा हुई, तो यहाँ अभाव से भाव हो गया, जो फिर से सिद्धान्तविरुद्ध है। यदि दो अस्तित्व एक चेतन और दूसरा जड़ पदार्थ मान लेने से काम चल जायेगा, तो तीसरी सत्ता मानने की क्या आवश्यकता है? तीसरी

सत्ता जिसे सर्वव्यापक चेतन सत्ता कहा जाता है, इसको मानने की आवश्यकता इसलिए पड़ती है, क्योंकि संसार की भिन्न-भिन्न व विभिन्न रचनाएँ किसी सर्वज्ञ व सर्वव्यापक चेतन सत्ता का अस्तित्व मानने से ही समझ में आती हैं, अन्यथा समझ नहीं आती। इस चेतन सत्ता को सर्वव्यापक, निराकार और सर्वज्ञ मानने से यह हमारी सीमित चेतन सत्ता की सीधी पकड़ से बाहर हो जाने से ऐसी सत्ता को मानने में कठिनाई आती है।

जानने के दो मुख्य साधन हैं— वस्तु का प्रत्यक्ष और वस्तु का प्रत्यक्ष नहीं, तो उसके प्रभाव का प्रत्यक्ष। पहला रास्ता साधना का है, जो बहुत थोड़े व्यक्तियों के सामर्थ्य का है और दूसरा रास्ता प्रभाव का प्रत्यक्ष करने का है, जिसका मुख्य आधार तर्क है। पुस्तक में सर्वव्यापक चेतन सत्ता, जिसको ईश्वर, परमात्मा आदि अनेक नामों से कहा जाता है, के प्रभाव को तर्कसंगत विचार के साथ दिया गया है। सर्वव्यापक, निराकार एवं सर्वज्ञ चेतन सत्ता का स्वरूप कैसा होगा, इसका भी तर्कसंगत विचार रखा गया है। सर्वव्यापक होने से ईश्वर को सीमित नहीं किया जा सकता और आकार सीमाओं से बनता है, तो ईश्वर को निराकार मानना पड़ेगा, सर्वव्यापक और निराकार होने का सीधा निष्कर्ष है कि ईश्वर किसी भी आकार में नहीं बँध सकता, तो ईश्वर अवतार नहीं लेता। यह भी सिद्धान्त है कि किसी भी वस्तु का स्वयं के लिए कोई प्रयोजन नहीं होता, जैसे आम आम के लिए या कुर्सी कुर्सी के लिए नहीं है। इसी प्रकार केवल ईश्वर का ही अस्तित्व मानें, तो ईश्वर का ईश्वर के लिए कोई प्रयोजन नहीं होता और इसी प्रकार केवल पदार्थ का ही अस्तित्व मानें, तो पदार्थ का पदार्थ के लिए कोई प्रयोजन नहीं होता। इसलिए हमें मानना पड़ेगा कि ईश्वर ने पदार्थ का प्रयोग करके विभिन्न रचनाएँ एकदेशी चेतना

(आत्मा) के लिए बनाई। यहाँ यह कहें कि ईश्वर ने रचनाएँ अपने लिए बनाई, तो ठीक नहीं होगा, क्योंकि ईश्वर को सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, निराकार व आनन्दस्वरूप माना है, तो ऐसी सत्ता की कोई आवश्यकता नहीं हो सकती। हमारे चारों तरफ का खेल तीन अनादि सत्ताओं (ईश्वर, आत्मा, पदार्थ) अर्थात् त्रैतवाद को मानने से ही समझ आता है, अन्यथा नहीं।

पदार्थ (जड़) की स्वाभाविक स्थिति व ईश्वर— भौतिकी की दो मूलभूत परिभाषाओं पर विचार करते हैं। पहली गति की परिभाषा लें। कोई वस्तु गति में होगी, यदि वह आस-पास के परिवेश के मुकाबले स्थिति बदल रही है। एक वस्तु एक ही समय में एक परिवेश के मुकाबले गति में हो सकती है और दूसरे परिवेश के मुकाबले विराम में हो सकती है, जैसे चलती ट्रेन में एक यात्री अपने साथी यात्री के मुकाबले विराम में है और बाहर के परिवेश के मुकाबले गति में है। इस प्रकार गति को परिभाषित करने के लिए परिवेश एक अनिवार्य शर्त हुई। हम स्थूल से सूक्ष्म की ओर जायें, तो वेदविज्ञान के अनुसार स्थूलभूतों की गति मनस्तत्त्व के मुकाबले जानी जायेगी, मनस्तत्त्व की गति अहंकार के मुकाबले होगी, अहंकार की गति महत्तत्त्व के सन्दर्भ में होगी और महत्तत्त्व की गति प्रकृति के मुकाबले होगी। प्रकृति की गति के लिए हमें किसी और सन्दर्भ की आवश्यकता होगी। यह सन्दर्भ वेदविज्ञान में ईश्वर को लिया है। ईश्वर में गति नहीं मानी गई, क्योंकि वह सर्वव्यापक है और सर्वव्यापक में गति सम्भव नहीं हो सकती। अब सूक्ष्म से स्थूल की ओर चलें, तो पृथ्वी पर गति पृथ्वी की सतह के मुकाबले जानी जायेगी, पृथ्वी की गति सूर्य के मुकाबले जानेंगे, सूर्य की गति गैलेक्सी के केन्द्र के मुकाबले पता लगेगी और गैलेक्सी की गति सभी गैलेक्सीज के केन्द्र

के सन्दर्भ में होगी। सभी गैलेक्सीज के केन्द्रों की गति अर्थात् सारे ब्रह्माण्ड की गति जानने के लिए फिर हमें अन्तिम सन्दर्भ ईश्वर को मानना पड़ेगा। तो पदार्थ की सूक्ष्मतम अवस्था हो, चाहे पदार्थ की स्थूल अवस्था सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड हो, प्रत्येक अवस्था में अन्तिम सन्दर्भ ईश्वर को मानना पड़ेगा, नहीं तो गति को परिभाषित नहीं किया जा सकता।

पदार्थवादी यहाँ एक अन्य स्थिति की कल्पना करते हैं। उनके अनुसार पदार्थ में गति स्वाभाविक रूप से होती है, पदार्थ बिना गति के होता ही नहीं। स्वाभाविक गति होने की निम्न स्थितियाँ हो सकती हैं—

१. ←0 0→ या 0→←0 दो वस्तुएँ चाहे किसी भी स्तर की हों, एक दूसरी से दूर जाये या नजदीक आये, उनमें गति होगी। ऐसी स्थिति में संयोग-वियोग सम्भव नहीं होगा। यहाँ केवल संयोग या वियोग ही होगा, दोनों सम्भव नहीं होंगे। दोनों के बिना सृष्टि रचना सम्भव नहीं होगी।

२. 0 0→ या 0←0 यहाँ एक वस्तु विराम में है और दूसरी नजदीक या दूर जा रही है। इस स्थिति में एक वस्तु को विराम में मानने से गति का मूल रूप में होना सिद्ध नहीं होता।

३. ↶0 0↷ (स्पिन मोशन) घूर्णन की गति मानें, तो यह उच्च ऊर्जा की स्थिति हुई और भौतिकी का नियम कहता है कि प्रत्येक वस्तु या वस्तु संघात कम से कम ऊर्जा की स्थिति में रहते हैं। दूसरे यहाँ गति को परिभाषित करने के लिए सन्दर्भ क्या लें?

४. 0→←0 या →0 0← यह दोलन गति है। इसके लिए हमें दो एक जैसी वस्तुओं में दो विरोधी बल मानने पड़ेंगे, जो सम्भव नहीं है।

यहाँ यह कहना या मानना भी अनुचित नहीं होगा कि पदार्थ की

मूल अवस्था गतिमान मानने के स्थान पर विराम वाली मानना तर्कविरुद्ध कैसे होगा? उपरोक्त स्थितियों में यह मानना तर्कसंगत है कि पदार्थ में मूल रूप में गति होना सम्भव नहीं है, गति बाहर से दी गई है। यहाँ गति देने वाला स्त्रोत ईश्वर ही मानना पड़ेगा।

अब दूसरी परिभाषा ऊर्जा की लेते हैं। भौतिकी में ऊर्जा को कार्य करने की क्षमता या योग्यता कहा गया है, तो ऊर्जा क्षमता या योग्यता हुई। यहाँ यह प्रश्न स्वाभाविक है कि क्षमता या योग्यता किसकी? क्षमता या योग्यता गुण है और गुण किसी गुणी का होगा और गुण को गुणी से अलग नहीं किया जा सकता। तो यह जानना महत्त्वपूर्ण हुआ कि वह वस्तु जिसमें कुछ करने की योग्यता है, वह क्या है? जब जड़ और चेतन को एक मानें, तो जीवन व मृत्यु में कोई फर्क नहीं होगा। यदि जीवन व मृत्यु एक ही हैं, तो किसी भी प्रकार के क्रियाकलाप में कोई फर्क नहीं होगा। यदि जड़ व चेतन को अलग मानें, तो कुछ मूल गुण होंगे, जो इनको अलग करते हैं।

चेतन के गुण ज्ञान व प्रयत्न माने गए हैं, तो जड़ में ये गुण नहीं होंगे। यदि प्रयत्न जड़ का गुण नहीं होता, तो ऊर्जा का अन्तिम स्त्रोत जड़ नहीं हो सकता। यदि मूल रूप में जड़ में ऊर्जा नहीं है, तो यह किसी चेतन द्वारा दी गई माननी पड़ेगी। जड़ में यदि ज्ञान का गुण नहीं है, तो ऊर्जा के होते हुए भी कोई रचना सम्भव नहीं है, क्योंकि रचना के लिए ऊर्जा द्वारा दी गई गति को दिशा चाहिए। बिना दिशा की गति कोई रचना नहीं कर सकती। तो ऊर्जा मूल रूप से जड़ का गुण नहीं हो सकता। यह चेतन का गुण है, तो जड़ को ऊर्जा चेतन से प्राप्त हुई। इसका परिणाम हुआ कि जड़ की अन्तिम स्वाभाविक स्थिति विराम है, जिसे प्रकृति

कहा है। प्रकृति की रचना करने के लिए ऊर्जा चेतन द्वारा दी जाती है और इसी चेतन सत्ता को ईश्वर कहा है।

जड़त्व का सिद्धान्त (लॉ ऑफ इनर्शिया) — इस सिद्धान्त के अनुसार कोई वस्तु या वस्तु संघात अपने आप अपनी स्थिति नहीं बदलता, जब तक उस पर बाहर से बल नहीं लगाया जाये। एक वस्तु चाहे वह कितनी भी सूक्ष्म हो, चाहे कितनी भी स्थूल हो, बाहर के बल के बिना अपनी स्थिति नहीं बदलती। वस्तु संघात की स्थिति में संघात के घटक परस्पर या तो बल नहीं लगाते या बल लगाते हैं, तो ये बल एक-दूसरे को सन्तुलित किये रहते हैं और संघात की अवस्था या स्थिति बदलने के लिए बाहरी बल की आवश्यकता पड़ती है। अब पदार्थ की आरम्भिक अवस्था, जिसमें कोई रचना नहीं है (विराम अवस्था) या पदार्थ की दूसरी अवस्था, जिसमें रचनाएँ बन चुकी हैं या बन रही हैं (गति की अवस्था), इन दोनों स्थितियों में परिवर्तन जड़त्व के सिद्धान्तानुसार अपने आप नहीं होगा। इसका अभिप्राय हुआ विरामावस्था से रचनाएँ आरम्भ करने के लिए या रचना की अवस्था से विराम अवस्था की तरफ जाने के लिए बाहरी बल की आवश्यकता होगी। दूसरे शब्दों में यूँ कहा जा सकता है कि सृष्टि रचना आरम्भ करने के लिए और सृष्टि रचना से प्रलय लाने के लिए दोनों अवस्थाओं में बाहर से बल की आवश्यकता होगी। ब्रह्माण्ड से सृष्टि रचना करने या सृष्टि रचना को समाप्त करने से पहले वाली स्थिति लाने में बाहरी बल चाहिए और इस बाहरी बल को ईश्वर कहा है। यदि ब्रह्माण्ड के पदार्थ से बनी सृष्टि को सदैव से बना मानें और यह सदैव बनी रहेगी ऐसा मान लें, तो रेडियोधर्मिता और एन्ट्रॉपी के नियम ऐसा मानने से मना करते हैं। सृष्टि का बनना-बिगड़ना ही वैज्ञानिक नियमानुसार है और इसके लिए बाहरी बल चाहिए, जो चेतन ईश्वर से

ही मिल सकता है। प्रलय में पदार्थ रचनाविहीन होने से बिखरा हुआ होता है, एक बिन्दु पर इकट्ठा नहीं होता, इसलिए बिग-बैंग थ्योरी भी ठीक नहीं हो सकती। वैज्ञानिक सिद्धान्त तो वैदिक सिद्धान्त है, जिसमें प्रकृति (पदार्थ की विराम अवस्था) से ईश्वर द्वारा सृष्टि रचना और सृष्टि रचना (गति अवस्था) से प्रलय अवस्था बारी-बारी से आती रहती है।

भौतिकी के बहुत सारे मूलभूत सिद्धान्त हैं, जिन पर गहराई से विचार करते हैं, तो हमें ईश्वर जैसी चेतन सत्ता में विश्वास करने पर विवश होना पड़ता है। यह आश्चर्य की बात है कि विज्ञान के नियम ईश्वर अस्तित्व की तरफ ले जाते हैं, परन्तु बहुत सारे वैज्ञानिक इन वैज्ञानिक निष्कर्षों की अनदेखी करके विज्ञान की उन्नति को गलत दिशा में ले जाने में भागीदार बन रहे हैं। वैदिक विज्ञान और आधुनिक विज्ञान में यह एक मौलिक भिन्नता है। श्रद्धेय आचार्य अग्निव्रत जी ने अपने 'वेदविज्ञान-आलोक:' ग्रन्थ में सृष्टि उत्पत्ति प्रक्रिया में चेतन सत्ता ईश्वर द्वारा की गई रचना का सटीक व वैज्ञानिक वर्णन किया है। वैदिक विज्ञान आधुनिक विज्ञान को नई दिशा दे सकता है। आधुनिक विज्ञान जितना शीघ्र वेदविज्ञान से निर्देश लेगा, उतना ही शीघ्र मानवता का कल्याण सम्भव होगा।

* * * * *

2. आत्मा—

एकदेशी चेतन सत्ता को आत्मा कहा है। भाव का अभाव और अभाव से भाव का होना सम्भव नहीं हो सकता। इसी सिद्धान्त के आधार पर आत्मा का स्वतन्त्र नित्य अस्तित्व माना गया है। कुछ लोग आत्मा को

परमात्मा का अंश मानते हैं, यह बात भी भाव-अभाव वाले उपरोक्त मूल सिद्धान्त के विरुद्ध होने से मान्य नहीं है, क्योंकि ईश्वर व आत्मा के बहुत सारे गुण-धर्म अलग हैं। एक और मूलभूत बात यह है कि आत्मा परमात्मा का अंश तभी कहलायेगी, जब वह अंश शेष परमात्मा से अलग हो जाये। जैसे समुद्र के पानी का एक छोटा सा अंश जब समुद्र से अलग कर दिया जाए, तब वह पानी पानी की बूँद कहलाता है और जब वही बूँद समुद्र में मिल जाये, तो वह बूँद नहीं समुद्र ही बन जाती है। तो एक छोटी चेतना को आत्मा कहलाने के लिए सर्वव्यापक चेतना, जिसे परमात्मा कह रहे हैं, से अलग होना चाहिए, परन्तु सर्वव्यापक चेतना, जिसे परमात्मा कहा जा रहा है, उससे एक अंश अलग कहाँ होगा, अलग होने का स्थान कहाँ है और जब तक उससे अलग नहीं होगा, तब तक आत्मा कैसे कहलायेगा? जैसे पानी के छोटे अंश को बूँद कहलाने के लिए समुद्र से अलग होना जरूरी है, नहीं तो समुद्र का सारा पानी समुद्र है, बूँद नहीं कहला सकता। वैसे भी अंश के गुणधर्म वही होते हैं, जिसका वह अंश है। इस हिसाब से आत्मा को परमात्मा का अंश मानें, तो आत्मा और परमात्मा के बहुत सारे गुणधर्म एक जैसे होने चाहिए, जो कि नहीं हैं।

ईश्वर या परमात्मा सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, निराकार व आनन्दयुक्त होने से ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो परमात्मा को उपलब्ध न हो। दूसरी तरफ आत्मा के एकदेशी होने से उसका हर प्रकार का सामर्थ्य सीमित होगा, तो ये रहस्यमय, विचित्र और बड़े स्तर पर रचनाएँ आत्मा द्वारा बनाई गई नहीं मानी जा सकती। जड़ पदार्थ में ज्ञान नहीं होता, तो रचना करना सम्भव नहीं होगा। यदि यह माना जाये कि जड़ के अपने गुणधर्म हैं, उनके परिणामस्वरूप रचनाएँ हो सकती हैं, तो भी यह मान्य

नहीं होगा, क्योंकि जड़ के गुणधर्म के परिणामस्वरूप बनी रचनाओं में कोई प्रयोजन नहीं हो सकता। प्रयोजन ज्ञान का परिणाम है, जो जड़ पदार्थ में नहीं है, लेकिन हम रचनाओं में प्रयोजन देख रहे हैं। रचनाएँ एक-दूसरे की पूरक हैं। परमात्मा को कुछ चाहिए नहीं, जड़ में ज्ञान नहीं और आत्मा का सामर्थ्य सीमित है, तो सृष्टि रचना का कार्य ईश्वर द्वारा आत्मा के लिए किया गया मानना पड़ेगा। यहाँ प्रश्न किया जाता है कि निराकार परमात्मा कोई रचना कैसे कर सकता है, तो यह मूल सिद्धान्त ध्यान में रखना चाहिए कि किसी रचनाकार का रचना की सामग्री के साथ सम्पर्क होना मूल शर्त है। परमात्मा क्योंकि सर्वव्यापक है, तो उसको सबसे सूक्ष्म मानना पड़ेगा और सबसे सूक्ष्म है, तो उपादान कारण प्रकृति (जड़ पदार्थ) के साथ सदैव सम्पर्क में रहने के कारण और चेतन होने के कारण रचना का ज्ञान होने से वह रचना कर लेता है। सर्वव्यापक व निराकार होने के कारण ईश्वर को किसी स्थान विशेष या आकार विशेष में मानना सिद्धान्त के विरुद्ध है।

आत्मा को एकदेशी चेतन सत्ता माना गया है। आत्मा के एकदेशी व परिछिन्न होने का अभिप्राय है कि आत्मा का प्रभाव क्षेत्र जिस शरीर में आत्मा है, केवल उस शरीर तक ही सीमित है, उस शरीर से बाहर प्रभाव नहीं है। परिछिन्न का अभिप्राय है— अलग-थलग अर्थात् प्रत्येक आत्मा अलग है। आत्मा भी ईश्वर की तरह निराकार है। यहाँ निराकार होने का हेतु चेतनता है। चेतना निराकार होती है, साकार नहीं होती। कुछ लोग आत्मा को एकदेशी होने के कारण साकार मान लेते हैं, यह गलत है, क्योंकि आकार सीमाओं से बनता है और आकार वाली वस्तु सीमा से बाहर नहीं हो सकती। आत्मा जिस भी शरीर में होगी, उस शरीर का आकार आत्मा से बहुत-बहुत बड़ा होगा, तो किसी आकार विशेष वाली

आत्मा उस शरीर का संचालन कैसे करेगी, क्योंकि आत्मा आकार से बाहर नहीं हो सकती। यदि यह कहें कि आत्मा तो आकार से बाहर नहीं है, परन्तु उसका प्रभाव सारे शरीर पर होने से वह शरीर का संचालन कर लेती है। इस तर्क को ईश्वर पर लागू करें, तो कह सकते हैं कि ईश्वर भी आकार विशेष में रहकर सारी सृष्टि का संचालन अपने प्रभाव से कर लेता है। यदि ऐसा है, तब सर्वव्यापक को आकार में बाँधना कैसे सम्भव होगा और सब जगह एक जैसा प्रभाव होने से परमात्मा को प्रत्येक जगह बराबर मानना पड़ेगा, जो किसी आकार वाली वस्तु के लिए सम्भव नहीं है। इसलिए आत्मा और परमात्मा को चेतन होने के कारण निराकार मानना पड़ेगा।

आत्मा सीमित सामर्थ्य और सीमित ज्ञान वाली होने के कारण अच्छे-बुरे दोनों तरह के कार्य करेगी, तो कर्मानुसार फल मिलना चाहिए, नहीं तो सृष्टि व्यवस्था नहीं चल सकेगी। इसके लिए परमात्मा आत्माओं के लिए सृष्टि रचना करता है। सृष्टि रचना ईश्वर पदार्थ के माध्यम से आत्माओं के लिए करता है, तो तीन अनादि सत्ताएँ— ईश्वर, पदार्थ (जड़) और आत्माएँ माननी पड़ेंगी। यही त्रैतवाद है। इस कारण तर्कसंगत मान्यता त्रैतवाद है, न कि अद्वैतवाद या पदार्थवाद।

त्रैतवाद को मानने-समझने का एक बहुत ही व्यावहारिक और उपयोगी पहलू भी है। यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि कोई भी जीव अर्थात् कोई भी आत्मा दुःखी नहीं रहना चाहता अर्थात् सभी सुखी रहना चाहते हैं। यदि हम आत्मा को अनादि सत्ता मानते हैं, तो पुनर्जन्म मानना पड़ेगा। ईश्वर को सृष्टिकर्त्ता और आत्माओं को कर्मानुसार फल देने वाला मानते हैं, तो ईश्वर अच्छे कर्म का फल सुख के रूप में और बुरे कर्म का फल

दुःख के रूप में देगा और दुःखी होना कोई नहीं चाहता। इसलिए निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि त्रैतवाद को मानने वाला कोई गलत या बुरा कार्य नहीं करेगा और गलत कार्य नहीं होंगे, तो धरती स्वर्ग बन जायेगी, इसमें किसी सन्देह की गुंजाइश नहीं है। आत्मा-परमात्मा और कर्मफल-व्यवस्था को मानने-समझने का यह सबसे महत्त्वपूर्ण परिणाम है।

प्रायः नास्तिक ईश्वर व आत्मा को नकारने हेतु कुछ तर्क देते हैं, सारांश रूप में जो निम्न प्रकार से हैं—

1. ईश्वर अस्तित्व के पक्ष में जो तर्क दिया जाता है कि अकस्मात् (बाय चांस) परमाणुओं के संघात से कोशिका के किसी साधारण से साधारण प्रोटीन अणु के बनने की सम्भावना लगभग शून्य है, तो इस गणित को नकारने हेतु नास्तिक कहता है कि अणु बनने की प्रक्रिया के समय जो अधूरा अणु बनता है, वह पूर्ण अणु बनने की प्रक्रिया में उत्प्रेरक का कार्य करता है और अधूरे अणु दूसरे अधूरे अणुओं के साथ मिलकर पूर्ण अणु बनाने की सम्भावना को काफी बढ़ा देते हैं और इस प्रकार किसी प्रोटीन अणु के अपने आप परमाणुओं के मिलने से बनने की सम्भावना काफी बढ़ जाती है। अणु में जुड़े परमाणु विशेष क्रम में होने से यह परमाणु संघात (अणु) उच्च ऊर्जा की स्थिति में होता है और भौतिकी के नियमानुसार कोई संघात उच्च ऊर्जा की स्थिति में अपने आप नहीं जाता। इस बारे में तर्क देते हैं कि यह सम्भव है कि उच्च ऊर्जा की स्थिति अपने आप भी आ सकती है, जैसे बर्फ (स्नो फ्लेक्स) व रवे (क्रिस्टल) बनना। यहाँ अधूरे अणुओं के उत्प्रेरक का कार्य व अमीनो अम्लों के परस्पर बॉन्ड बनाना और दूसरे कई प्रकार के उत्प्रेरकों व स्थितियों, जैसे

बर्फ में रवे बनने के लिए विशेष दबाव, तापक्रम व संघात आदि का होना, इन सबकी सम्भावना परमाणुओं के अव्यवस्थित वातावरण में कितनी होगी, इस बात की अनदेखी करके अणु के अपने आप बनने की बात पर जोर दिया जाता है कि प्रोटीन अणु के अपने आप बनने की सम्भावना यदि 10^{160} में एक है, तो अधूरे अणु बनने की और वांछित परिस्थितियों के अपने आप बनने की सम्भावना 10^{20} में एक होगी, तो भी वांछित अणु के अपने आप बनने में ब्रह्माण्ड की आयु से अधिक समय लग जाएगा। इस प्रकार संरचनाओं का अपने आप बनने की सम्भावना सभी प्रकार की सहायक स्थितियों की कल्पना करने पर भी नहीं के बराबर है, तो रचनाओं के पीछे किसी सत्ता/एजेंसी को मानना पड़ेगा।

2. परमाणुओं का संघात जीवन की तरह व्यवहार करने लग जाता है। आत्मा जैसी अलग से चेतन सत्ता मानने की कोई आवश्यकता नहीं है। यहाँ नास्तिकों की यह मान्यता कि परमाणु संघात जीवन बन जाता है, तीन मूलभूत बातों का खण्डन करती है। पहली बात यह कि जब परमाणुओं में किसी भी प्रकार की कोई चेतना या जीवन नहीं है, तो उनके संघात में कहाँ से आएगी? ऐसा मानना तो 'भाव से अभाव और अभाव से भाव नहीं हो सकता' के सिद्धान्त का खण्डन करना है। दूसरी बात यह है कि परमाणु संघात, जो जीवन की तरह व्यवहार कर रहा है, यह संघात परमाणुओं के क्रमबद्ध संघात की अवस्था है। कोई भी संघात जिसके घटक क्रमबद्ध अवस्था में हैं, वह उच्च ऊर्जा की स्थिति में है और भौतिकी के नियमानुसार प्रत्येक संघात कम से कम ऊर्जा की स्थिति में आना चाहता है, जहाँ उसके घटकों की क्रमबद्ध स्थिति नहीं होती। परमाणु संघात जो जीवन की तरह व्यवहार कर रहा है, उसका स्वाभाविक

रुझान (टेंडेंसी) कम ऊर्जा अर्थात् परमाणु की अव्यवस्थित स्थिति में आना रहेगा। परमाणुओं की अव्यवस्थित स्थिति का अर्थ है— जीवन का लुप्त होना। तो परमाणुओं के संघात वाले जीवन का रुझान लुप्त होने का रहेगा अर्थात् प्रत्येक जीवधारी की इच्छा मरने की रहेगी, परन्तु यह प्रत्यक्ष सत्य है कि प्रत्येक जीवधारी जीवित रहना चाहता है, मरना कोई नहीं चाहता। तीसरी बात यह कि परमाणु भौतिकी व रसायन शास्त्र के नियम के अनुसार व्यवहार करते हैं अर्थात् परमाणु भौतिकी व रसायन शास्त्र के नियमों से बँधे हुए हैं, तो उनका संघात भी नियमों से बँधा होगा। इसका अर्थ हुआ कि जो जीवन परमाणु संघात का परिणाम है, वह नियमों से बँधा हुआ होगा और उसमें स्वतन्त्र इच्छा जैसी किसी चीज का होना सम्भव नहीं होगा, परन्तु यह भी प्रत्यक्ष सत्य है कि प्रत्येक जीवधारी में स्वतन्त्र इच्छा होती है, तो जीवन को परमाणु संघात का परिणाम न मानकर स्वतन्त्र अस्तित्व मानना पड़ेगा।

3. सभी नास्तिक डार्विन के विकासवाद को मानते हैं, क्योंकि आस्तिकों का तर्क है कि विभिन्न रचनाएँ ईश्वर ने बनाईं, तरह-तरह की रचनाएँ अपने आप नहीं बन सकतीं। इसके उत्तर में नास्तिक का कहना है कि बाह्य प्रभाव के कारण रचनाएँ एक साधारण रचना से एक-दूसरे में रूपान्तरित होकर बनती चली गईं। बाहरी प्रभाव के कारण रचनाएँ एक-दूसरे में परिवर्तित होते हुए एक साधारण रचना अमीबा से मनुष्य तक बन गया, यही डार्विन का विकासवाद है। जिस प्रकार एक प्रोटीन अणु के परमाणुओं के अपने आप जुड़ने में नास्तिक अनेक परिस्थितियों की कल्पना करता है, उसी प्रकार अमीबा से मानव तक की यात्रा में अनेक प्रकार की मान्यताओं व सिद्धान्तों की कल्पना डार्विन के विकासवाद में की गई है। इन कल्पनाओं में सिद्धान्तों पर ढेर सारी आपत्तियाँ की गई

हैं। सारांश रूप में यह कितनी सरल बात है कि जब प्रोटीन अणु के अपने आप बनने और अमीबा से मनुष्य बनने में ढेर सारी कल्पनाएँ करनी पड़ रही हैं, तो यह बात असम्भव कैसे है कि जब अमीबा परमाणुओं के अकस्मात् संघात से बन सकता है, तो विभिन्न प्राणियों के शुक्राणु व अण्डज अपने आप क्यों नहीं बन सकते? विभिन्न प्राणियों के अण्डज व शुक्राणु बनने पर डार्विन के विकासवाद की आवश्यकता ही नहीं होगी। इस सरल सी बात का निष्कर्ष हुआ कि रचनाएँ भिन्न-भिन्न बनी हैं और इनका एक-दूसरे में रूपान्तरण नहीं हुआ है। सभी रचनाएँ एक-दूसरे की पूरक व सहयोगी हैं। ये अकस्मात् का परिणाम न होकर किसी योजनाकार की कृति ही हो सकती हैं।

4. सभी रचनाएँ परमाणुओं से बनी हैं। परमाणु भी बहुत छोटे और सूक्ष्म घटकों से बने हैं। पदार्थ के सूक्ष्मतम घटक से लेकर विभिन्न स्तर की जड़ व चेतन रचनाएँ कैसे बनीं, विज्ञान यह भी समझाने का प्रयास करता है। कुछ वैज्ञानिकों व नास्तिकों का मत यह भी है कि संसार की रचना करने वाला कोई नहीं है, यह सृष्टि सदैव से थी और सदैव रहेगी। भौतिकी के एन्ट्रॉपी व रेडियोधर्मिता के सिद्धान्त सृष्टि के सदैव से होने वाली कल्पना का खण्डन करते हैं और सृष्टि के आदि और अन्त की पुष्टि करते हैं। यदि आदि और अन्त को क्रिया मानकर किसी कर्त्ता की बात कहें, तो नास्तिक और कुछ वैज्ञानिक सृष्टि प्रक्रिया का आधार महाविस्फोट (बिग बैंग) को बताते हैं और पदार्थ की सूक्ष्मतम अवस्था से तारे बनने तक की प्रक्रिया में बहुत सारी कल्पनाओं को आधार बनाते हैं। ये कल्पनाएँ कुछ प्रक्रियाओं को समझने में उपयोग की जाती हैं, तो बहुत सारी विरोधाभासी स्थितियाँ भी बनती हैं। यह सरल बात है कि सृष्टि के घटक मूल कणों, बलों, आवेश, स्पेस, टाइम, द्रव्यमान आदि के ठीक

स्वरूप की जानकारी के अभाव में सृष्टि के बनने-बिगड़ने की प्रक्रिया को भी ठीक से नहीं समझा जा सकता। उदाहरण के लिए ब्रह्माण्ड का विस्तार 10^{26} मी. माना जाता है और ब्रह्माण्ड की आयु 10^{17} से. मानते हैं। महाविस्फोट से वर्तमान तक तो छोड़िए, ब्रह्माण्ड की कुल आयु में भी 10^{26} मी. का विस्तार पदार्थ के 10^{8} मी./से. की गति से सम्भव है, परन्तु विज्ञान के अनुसार 10^{8} मी./से. वेग प्रकाश वेग है और ग्रह, तारे आदि इस वेग से नहीं चल सकते, तो यह 10^{26} मी. का विस्तार कैसे हुआ? स्पेस, टाइम, आवेश, पदार्थ, प्रति पदार्थ (पार्टिकल-एंटी पार्टिकल), वर्चुअल कण, वैक्यूम ऊर्जा आदि के बारे में भी बहुत सारी विरोधी कल्पनाएँ हैं। नास्तिक की मान्यता है कि ब्रह्माण्ड की सभी प्रक्रियाएँ पदार्थ के नियमों के अनुसार अपने आप हो रही हैं, कोई बाहरी एजेंसी नहीं है। यहाँ एक मूलभूत बात पर विचार करना अनिवार्य है। यह बात तो ठीक है कि पदार्थ नियम के अनुसार कार्य करता है, परन्तु कार्य का उद्देश्य पदार्थ स्वयं तय नहीं कर सकता, क्योंकि पदार्थ जड़ है, पदार्थ में ज्ञान नहीं है और उद्देश्य का सीधा सम्बन्ध ज्ञान से है। अब केवल पदार्थ का ही अस्तित्व मानें, तो पदार्थ क्रिया तो कर रहा है, परन्तु क्यों कर रहा है? किसके लिए कर रहा है? यह सब उसे नहीं पता। इन क्रियाओं को जानने वाला नास्तिक भी स्वयं पदार्थ है, तो उसके लिए भी इन क्रियाओं का कोई प्रयोजन नहीं है। केवल पदार्थ को मानना अर्थात् नास्तिक होना एक प्रयोजनविहीन अन्ध कूप में रहना है और इस होने न होने का कोई महत्त्व नहीं है अर्थात् होना और न होना बराबर है।

5. सभी नास्तिकों का एक सामान्य तर्क यह भी है कि हम उसी वस्तु का अस्तित्व मानेंगे, जिसका प्रत्यक्ष हो या उसके होने का प्रभाव प्रयोग द्वारा सिद्ध हो। यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि सूक्ष्म से स्थूल को

जाना जाता है, स्थूल से सूक्ष्म को नहीं जान सकते। आत्मा-परमात्मा सूक्ष्म होने से प्रयोगशाला में किसी भी रूप में नहीं जाने जा सकते। जहाँ तक प्रत्यक्ष का सम्बन्ध है, इसके दो भाग हैं— एक प्रत्यक्ष तो वह है, जो अनुभव में आ गया और दूसरा प्रत्यक्ष किसी अस्तित्व के प्रभाव को देखकर या जानकर होता है। आत्मा-परमात्मा का अनुभव करने की अलग प्रक्रिया है, इसको किए बिना अनुभव नहीं होगा। इस कार्य में विज्ञान की प्रयोगशाला का कोई हस्तक्षेप नहीं है। दूसरा प्रत्यक्ष प्रभाव देखकर होता है, जैसे एक रबर से ढके चालक तार में विद्युत् करंट है या नहीं, यह हम इन्द्रियों से प्रत्यक्ष नहीं कर सकते, परन्तु तार को बल्ब या पंखे से जोड़ दें और बल्ब प्रकाश देने लगे या पंखा चलने लगे, तो हमें शत-प्रतिशत विश्वास हो जाता है कि तार में करंट है। यहाँ हमने करंट को प्रत्यक्ष नहीं किया है, अपितु उसके प्रभाव को देखकर उसके होने का निश्चय किया है। इसी प्रकार आत्मा-परमात्मा को प्रत्यक्ष करने का मार्ग तो अनुभव है, परन्तु सृष्टि रचना और जीवों के व्यवहार को देखकर परमात्मा व आत्मा के होने का निश्चय अवश्य होता है। होने का निश्चय होना भी बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि जैसे हमें किसी स्थान पर जाना है और हमारे सामने बहुत सारे मार्ग हैं, तो हम अपने गन्तव्य पर तभी पहुँच पायेंगे, जब ठीक मार्ग की पहचान हो सकेगी, नहीं तो हम गन्तव्य पर कभी नहीं जा पायेंगे। इसलिए आत्मा-परमात्मा के होने का निश्चय ही हमें अनुभव तक ले जाएगा, अन्यथा जब इनके अस्तित्व का निश्चय ही नहीं होगा, तो अनुभव होना भी सम्भव नहीं होगा।

6. नास्तिकों का आधार भौतिक विज्ञान की थ्योरीज् हैं। विज्ञान की थ्योरीज् के बारे में कुछ वैज्ञानिकों के विचार जान लेना उचित रहेगा।

1. बहुत सारी विरोधी थ्योरीज् के पक्ष में तर्क दिए जा सकते हैं। —रिचर्ड पी. फेनमैन
2. थ्योरी एक मॉडल है, जो मस्तिष्क में रहता है, इसकी वास्तविकता नहीं होती, यह हमेशा अस्थायी है। —स्टीफन हॉकिंग
3. गणित और गणित की गणनाएँ गणित के लिए तो ठीक हैं, परन्तु जीवन की किसी घटना की सटीक जानकारी यह दे पायेंगी, यह आवश्यक नहीं। —रिचर्ड पी. फेनमैन
4. विज्ञान के पास कोई स्थायी थ्योरी नहीं है। —अल्बर्ट आइंस्टीन
5. 10^{-15} से.मी. से नीचे की दूरियों में केवल विचार की ही पहुँच है। —जॉन व्हीलर

तो संसार की ठीक व्याख्या व समझ आत्मा, परमात्मा व पदार्थ अर्थात् त्रैतवाद द्वारा ही सम्भव है, केवल पदार्थ को मानने से नहीं।

* * * * *

3. वेद—

परमात्मा ने आत्माओं के लिए सृष्टि रचना की। सृष्टि रचना के दो प्रयोजन हैं— एक तो आत्मा के लिए, जो अपने कर्मों के फल भोग सके और दूसरा यह कि आत्मा कर्म करने के साथ-साथ आनन्द प्राप्त कर सके। आनन्द स्थायी, लम्बे व शुद्ध सुख का नाम है। इसका स्रोत परमात्मा है, तो परमात्मा का सानिध्य आत्मा को मिल सके और आत्मा आनन्दित हो सके, इसके लिए जब तक यह मंजिल प्राप्त न हो जाये, आत्माएँ सुखपूर्वक कैसे रह सकती हैं? इन सब बातों की जानकारी

आत्माओं को होनी आवश्यक है। यह भी सिद्धान्त है कि किसी भी उपकरण का ठीक प्रयोग लाभदायक अर्थात् सुख देने वाला और गलत प्रयोग हानिकारक अर्थात् दु:ख देने वाला होता है। उपकरण के ठीक-गलत प्रयोग की विधि को उपकरण बनाने वाला प्रयोग करने वाले से ज्यादा जानता है, तो सृष्टि रचनाकार परमात्मा सृष्टि के ठीक प्रयोग की विधि आत्माओं को जनाता है। ईश्वर द्वारा आत्माओं को दी गई इसी जानकारी का नाम वेद है। वेद रूपी जानकारी परमात्मा द्वारा दी गई है अर्थात् वेद ईश्वरीय ज्ञान है।

यह बात कैसे मानें? इसके लिए हमें कुछ स्वयंसिद्ध बातों पर ध्यान देना होगा।

1. जब सबसे पहले मनुष्य धरती पर आया, तो परमात्मा के अतिरिक्त ज्ञान देने वाला कोई नहीं था।

2. परमात्मा सर्वज्ञ है, तो उसके द्वारा दिये ज्ञान में कोई गलती नहीं होगी।

3. सुखी जीवन के लिए सभी क्षेत्रों की जानकारी आवश्यक है।

4. यह ज्ञान सभी स्थानों व सभी समयों में प्रयोग होने वाला (सार्वभौमिक व सार्वकालिक) होना चाहिए।

5. क्योंकि सृष्टि परमात्मा द्वारा सभी आत्माओं के लिए बनाई गई है, तो परमात्मा द्वारा दिये ज्ञान में किसी प्रकार का पक्षपात नहीं होना चाहिए।

इन सभी कसौटियों पर वेद ही खरा उतरता है, विश्व का अन्य कोई ज्ञान स्रोत इन सभी कसौटियों पर खरा नहीं उतरता। अन्य जितने भी ज्ञान स्रोत हैं, उनकी सभी ठीक बातें वेद से ली हुई हैं और जो बातें अधूरी या गलत हैं, वे उनकी अपनी हैं।

इस बात को मानने के तीन आधार हैं। पहला आधार यह कि वेद सबसे पुराना है, तो बाद वाला पहले वाले से लेगा, न कि पहले वाला बाद वाले से लेगा। दूसरा आधार यह कि एक भी मानवोपयोगी जानकारी ऐसी नहीं है, जो वेद में न हो और किसी अन्य स्रोत में उपलब्ध हो। तीसरा आधार यह कि ठीक बातों में विरोध नहीं होता। वेद की बातों में विरोध नहीं है, जबकि अन्य ज्ञान-स्रोतों की बातों में विरोध मिलता है। मानव जीवन को सुखी और अन्त में आनन्दपूर्ण बनाने का एकमात्र उपाय ईश्वर द्वारा दिये ज्ञान वेद के अनुसार चलना है, अन्य कोई उपाय नहीं है।

वेद की रक्षा कौन करे— आचार्य अग्निव्रत जी ने देशवासियों और विशेषतया आर्यसमाज के सामने एक वीडियो के माध्यम से आर्य्यावर्त (भारत) देश की मूल धरोहर वेद की दशा का वर्णन किया। विस्तार से वेद की संकटग्रस्त स्थिति के कारणों की भी चर्चा की। पाँच हजार साल के अति दीर्घ कालखण्ड में हुए वेद के विनाश के बाद ऋषि दयानन्द के वेद पुनर्स्थापना के महत्त्वपूर्ण कार्य और इस महत्त्वपूर्ण कार्य के प्रति ऋषि की तड़प और ऋषि के आह्वान की चर्चा भी की। वेद की चिन्ताजनक हालत के कारणों का भी आचार्य जी ने जिक्र किया। इस वस्तुस्थिति को भी आचार्य श्री ने अच्छी प्रकार पहचाना कि सभी मत-पन्थ वेद के विरुद्ध क्यों हैं। वेद की पुनः स्थापना के दो विकल्पों में एक राज्य व्यवस्था आर्यों के हाथ में होना और दूसरा वैज्ञानिक जगत् में वेद की वैज्ञानिकता स्थापित करना है। वर्तमान में दूसरे विकल्प के रूप में आचार्य अग्निव्रत जी ने घोर परिश्रम करके अत्यल्प साधनों में केवल ईश्वर कृपा के सहारे 'वेदविज्ञान-आलोकः' के रूप में ऐतरेय ब्राह्मण का

भाष्य किया, जिसके सामने वैज्ञानिक जगत् को वेदविज्ञान की सच्चाई को गम्भीरता से लेने को विवश होना पड़ा। आचार्य श्री ने मत-पन्थ वालों की इस चिन्ता को बड़ी गहराई से पहचाना है कि यदि वेद वैज्ञानिक जगत् में स्थापित हो गया, तो उनके (मत-पन्थों) अस्तित्व को खतरा हो जायेगा।

वर्तमान समय में वेद की स्थिति, वेद का सब ओर से विरोध, ऋषि दयानन्द के उत्तराधिकारी आर्यसमाज की वेद कार्य के प्रति उदासीनता, साधनों का भयंकर अकाल जैसे हालातों में वेद रक्षा कौन करे और कैसे करे? यह बहुत ही ज्वलन्त व महत्त्वपूर्ण विषय है। समाधान मूल सिद्धान्त से निकलता है। समस्या है— वेद की स्थिति संकटग्रस्त होने का कारण वेद की गलत व्याख्या और गलत भाष्य, तो समाधान है— वेद की ठीक व्याख्या और ठीक भाष्य। ठीक भाष्य कौन करे? यह समाधान का सबसे कठिन पक्ष है। 5 हजार वर्ष के बाद एक ऋषि दयानन्द आये, परन्तु बहुत सारे मोर्चों पर घोर संघर्ष के कारण उन्हें समयाभाव रहा और अंग्रेजों की कुटिलता ने उनका जीवन छीन लिया। इसका परिणाम हुआ— वेद का अधूरा भाष्य। ऋषि के 140 वर्ष बाद तक इस अधूरे कार्य को करने की योग्यता, तीव्र समर्पण व निश्चय नहीं मिला। मैं भारत देश और आर्यसमाज का ही नहीं, बल्कि सारी मानवता का सौभाग्य मानता हूँ कि ऋषि के महानतम अधूरे कार्य 'वेदभाष्य' को करने की योग्यता, समर्पण व संकल्प वर्तमान में केवल आचार्य अग्निव्रत के पास है। आचार्य श्री सभी कार्यों के मुकाबले वेद भाष्य को वरीयता दें, ऐसी हम सब की इच्छा है, क्योंकि जब कभी भविष्य में संसार को इस कार्य के महत्त्व का पता चलेगा और इस पर कार्य होगा, तो भी इससे

मानवता का बहुत बड़ा उपकार होगा, यह निश्चित है।

* * * * *

4. वर्ण-व्यवस्था—

वर्ण का अर्थ है— चुनना या पसन्द करना, तो वर्ण-व्यवस्था हुई— व्यवस्था का चुनाव। यहाँ जीवन चलाने के लिए जो क्रियाकलाप, व्यवस्था, तरीका है, उसको व्यवस्था कहा गया है। वर्ण-व्यवस्था का अभिप्राय हुआ कि जीवन को चलाने के लिए किस कार्य, व्यवस्था आदि का चुनाव किया जाये। यह भी स्वाभाविक है कि व्यक्ति उसी कार्य का चुनाव या वरण करेगा, जिसमें उसकी रुचि व योग्यता होगी, तो वर्ण-व्यवस्था का आधार हुआ— रुचि व योग्यता। मनुष्य जीवन को ठीक से चलाने के लिए चार प्रकार के कर्म या चार प्रकार की व्यवस्थाएँ आवश्यक हैं।

मनुष्य का लगभग सम्पूर्ण ज्ञान किसी माध्यम से प्राप्त किया जाता है, ऐसे ज्ञान को नैमित्तिक ज्ञान कहते हैं। दूसरे प्रकार का ज्ञान या जानकारी वह है, जो जन्म के साथ अपने आप परमात्मा की व्यवस्था के अनुसार मिल जाती है, जिसे किसी से सीखने की आवश्यकता नहीं होती, ऐसी जानकारी को स्वाभाविक ज्ञान कहा जाता है। मनुष्य का ज्ञान नैमित्तिक होने के कारण मनुष्य को सब कुछ सीखना पड़ता है। जीवन को ठीक से चलाने के लिए बहुत सारी जानकारियों की आवश्यकता होती है, तो एक प्रकार का कार्य हुआ— सीखना-सिखाना।

यह भी सच्चाई है कि सभी मनुष्य बौद्धिक, शारीरिक और रुचि के हिसाब से बराबर नहीं होते। मनुष्य समूह बनाकर रहता है, तो मनुष्य

समूह में सभी सुखपूर्वक रह सकें, किसी के साथ अन्याय और शोषण न हो, ऐसी व्यवस्था होना भी आवश्यक हुआ। जीवन चलाने के लिए बहुत सारी वस्तुओं की आवश्यकता होती है, तो जीवनोपयोगी वस्तुओं का उत्पादन और वितरण भी आवश्यक कार्य हुआ। प्रत्येक प्रकार के कार्यों में लगे व्यक्तियों को अपने कुछ कार्यों में सहायकों की आवश्यकता होती है, तो जीवन चलाने के कार्यों में लगे व्यक्तियों के सहायकों के रूप में कार्य करना भी एक प्रकार का कार्य हुआ। धरती पर जब से मानव आया, तब से लेकर वर्तमान तक और भविष्य में भी मानव जीवन को ठीक से चलाने के लिए उपरोक्त चार प्रकार के कार्य होते आये हैं, हो रहे हैं और भविष्य में भी होते रहेंगे। इन चार प्रकार के कार्यों को चुनने या वरण करने का नाम ही वर्ण–व्यवस्था है।

सीखने–सिखाने का कार्य करने वाले को ब्राह्मण, व्यवस्था बनाने वाले को क्षत्रिय, उत्पादन–वितरण करने वाले को वैश्य और इन तीनों के सहयोग–सेवा करने वाले को शूद्र का नाम दिया गया है। यह चुनाव विशुद्ध रूप से रुचि व योग्यता के आधार पर है, जन्म के आधार पर नहीं हो सकता, क्योंकि यह सच्चाई सदैव से चली आ रही है कि बाप–बेटे में और एक ही माँ–बाप से जन्मे भाई–बहिनों में रुचि और योग्यता का अन्तर होता है, तो बाप–बेटा या भाई–बहन एक ही कार्य का चुनाव कैसे कर पायेंगे, तो उनका एक ही वर्ण कैसे हो पायेगा ? जब वर्ण भिन्न होंगे, तो वर्ण–व्यवस्था का आधार जन्म से तो होना सम्भव ही नहीं है, तो कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र जन्म से कैसे हो सकता है ?

आदि ऋषि मनु महाराज ने इस प्राकृतिक कार्य विभाजन को वर्ण–व्यवस्था का नाम दिया और जिस पुस्तक में इस व्यवस्था को बताया गया

है, उसे मनुस्मृति कहते हैं। बाद के समय में कुछ अयोग्य व स्वार्थी लोगों ने उस व्यवस्था को जन्म के आधार पर कहना शुरू कर दिया और मनुस्मृति में बहुत सारी अनावश्यक मिलावट करके मनुस्मृति को बदनाम किया और इस ग्रन्थ को पक्षपात व शोषण का साधन बना डाला। वर्तमान में डॉ. सुरेन्द्र कुमार ने मनुस्मृति में की गई मिलावट को हटाकर मनुस्मृति का शुद्ध रूप प्रस्तुत किया है। वर्ण-व्यवस्था को कर्म से हटाकर जन्म के आधार पर लाने से ही बाद में जाति-पाति, ऊँच-नीच का भेदभाव बढ़ता गया और तथाकथित उच्च जातियों द्वारा निम्न मानी जाने वाली जातियों का सामाजिक व आर्थिक शोषण होने से समाज का बिखराव होता चला गया।

देश से अंग्रेजों के जाने के बाद संविधान के निर्माताओं ने निम्न जातियों को कुछ आर्थिक राहत देने के लिए नौकरियों में आरक्षण का प्रावधान किया, तो अब उच्च जातियाँ भी आरक्षण लेने या आरक्षण को खत्म करने के लिए संघर्ष कर रही हैं और राजनेता समाज को जाति-पाति में बँटा हुआ रखने के लिए जातीय संघर्षों को खूब हवा देते हैं। चीजों को ठीक करने व ठीक से समझने के स्थान पर जातीय बँटवारे को बनाये रखने के लिए सब प्रकार के हथकण्डे अपनाये जा रहे हैं। मनु महाराज को गाली देना, मनुस्मृति को जलाना आदि कार्यों के लिए निम्न जातियों के नेताओं के साथ तथाकथित उच्च जातियों के नेता कहीं अधिक जिम्मेदार हैं। सभी प्रकार के संघर्षों व अशान्ति का कारण वैदिक व्यवस्था को ठीक प्रकार से न समझना और वैदिक मान्यताओं से दूर हटना है।

* * * * *

5. धर्म—

वर्तमान समय में धर्म को ठीक से समझना बहुत आवश्यक है, क्योंकि—

1. धरती की पूरी जनसंख्या इससे अछूती नहीं है।
2. धर्म के नाम पर होने वाले संघर्षों में हुआ जान-माल का नुकसान युद्धों, महामारियों व प्राकृतिक आपदाओं से हुए नुकसान से कहीं अधिक है।
3. विज्ञान की अभूतपूर्व उन्नति होने पर भी धर्म के नाम पर होने वाले ढोंग, पाखण्ड व अन्धविश्वास पहले से अधिक हैं।
4. धर्म प्रत्येक के जीवन को गहराई से प्रभावित करता है।
5. मृत्यु सभी चीजों से और सभी सम्बन्धों से मुक्त कर देती है, परन्तु धर्म से मृत्यु भी अलग नहीं कर सकती अर्थात् धर्म मृत्यु के बाद भी आत्मा के साथ रहता है।

धर्म की तीन प्रकार की परिभाषाएँ मिलती हैं—

1. धर्म किसी नियम-मर्यादा के पालन का नाम है।
2. धर्म कर्त्तव्यपालन का नाम है।
3. मानव के मूल स्वभाव के अनुकूल व्यवहार करना धर्म कहलाता है।

इन तीन प्रकार की परिभाषाओं से हटकर धर्म की कोई परिभाषा कहीं भी नहीं मिलेगी। महर्षि दयानन्द ने धर्म की सटीक, सारगर्भित व संक्षिप्त परिभाषा दी है, जो तीनों प्रकार की परिभाषाओं को समेटे हुए है। उनके अनुसार 'सत्याचरण' ही धर्म है। नियम, सिद्धान्त व मर्यादा सत्य

पर टिके हैं और इनका पालन करना सत्याचरण है। कर्त्तव्यपालन सत्याचरण के बिना नहीं हो सकता और सभी मानव अपने प्रति सत्य व्यवहार चाहते हैं, तो 'सत्याचरण' में तीनों परिभाषाएँ समाहित हो जाती हैं। महर्षि ने जो परिभाषा दी है, ऐसी परिभाषा किसी भी दार्शनिक, धर्मगुरु व धर्मग्रन्थ के पास नहीं मिलेगी।

सभी मनुष्यों के लिए नियम, सिद्धान्त व मर्यादा एक जैसी होती हैं। सभी मनुष्यों के अपने-अपने परिवार, समाज, राष्ट्र और मानवता के प्रति कर्त्तव्य एक जैसे हैं और सभी मनुष्य अपने साथ सत्य व्यवहार चाहते हैं। धर्म की इन तीन प्रकार की परिभाषाओं से हटकर कोई परिभाषा नहीं हो सकती, तो स्पष्ट व सहज निष्कर्ष यह निकला कि सभी मनुष्यों का धर्म एक ही होगा, दो या अधिक धर्म नहीं हो सकते। वर्तमान में बहुत सारे धर्म प्रचलन में हैं, तो किस धर्म को मानव मात्र का एक धर्म मानें? वैसे तो सभी धर्म अपने आप को ठीक व मानव मात्र के कल्याण का एकमात्र धर्म मानते हैं, परन्तु सभी धर्म ठीक नहीं हो सकते। सभी धर्मों को ठीक मानने से एक सिद्धान्त का खण्डन होता है। सिद्धान्त यह है कि सत्य बातों में विरोध नहीं होता। हम वर्तमान के धर्मों की बहुत सारी बातों में विरोध देख रहे हैं, तो सारे धर्म ठीक नहीं हो सकते। हम किस धर्म को ठीक व मानव मात्र का धर्म मानें, इस समस्या का समाधान पाँच कसौटियों वा मापदण्डों के आधार पर होगा। पाँच कसौटियाँ हैं—

1. वे बातें जो तब से हैं, जब से मानव धरती पर आया।
2. जो बातें, विचार व दिशा-निर्देश सृष्टि नियमों के विरुद्ध नहीं हैं।
3. जो बातें और दिशा-निर्देश सार्वभौमिक व सार्वकालिक हैं।
4. जहाँ जीवन चलाने के सभी क्षेत्रों के दिशा-निर्देश एवं सिद्धान्त हों।

5. जो बातें मानव-मानव के बीच पक्षपात या भेदभाव न करती हों।

वर्तमान का कोई भी धर्म इन पाँचों कसौटियों पर खरा नहीं उतरता। केवल वेद ही इन सभी कसौटियों को पूरा करता है, तो निश्चित रूप से वेदानुकूल व्यवहार अर्थात् वेद को मानना ही मानव मात्र का एक धर्म है।

एक प्रश्न और उठता है कि वर्तमान में प्रचलित धर्म नहीं हैं, तो ये क्या हैं? वर्तमान में धर्म कहे जाने वाले वास्तव में धर्म नहीं हैं, ये तो केवल मत-पन्थ हैं। किसी स्थान पर किसी समय में किसी महापुरुष ने अपने समाज के लिए अच्छा समझकर कुछ बातें कही। ये बातें अमुक महापुरुष का मत या विचार थे। इन बातों को मानने वालों का एक समूह पन्थ हो गया। इस मत को मानने वालों ने इन बातों को एक धर्म का नाम दे दिया। इस प्रकार धरती पर भिन्न स्थानों पर भिन्न समयों में भिन्न महापुरुषों द्वारा दिये मतों को भिन्न-भिन्न धर्म कहा जाने लगा। इन सब मत-पन्थों में जो ठीक बातें हैं, वे वेद से ली गई हैं और जो गलत बातें हैं, वे उनकी अपनी हैं। ऐसा इसलिए है, क्योंकि वेद सबसे पुराना है और बाद वाला पहले वाले से लेगा, न कि पहले वाला बाद वाले में से लेगा। दूसरी बात यह है कि एक भी बात जो मानव कल्याण की है, वह वेद में न हो और किसी मत-पन्थ के ग्रन्थ में या किसी धर्मगुरु के पास हो, ऐसा नहीं है।

एक प्रश्न और है कि जब वेद सबसे पुराना है और मानवमात्र का एक धर्म है, तो भिन्न-भिन्न धर्म अस्तित्व में क्यों आये? इसका उत्तर है कि महाभारत के युद्ध तक सारी धरती पर वैदिक धर्म ही सभी का धर्म था। इस महायुद्ध के बाद वेद के पठन-पाठन एवं प्रचार-प्रसार में कमी

आती चली गई, जिसके कारण वेद की समझ विकृत होती चली गई और वेद की गलत समझ की प्रतिक्रिया में भिन्न-भिन्न मत-पन्थ बनते चले गये। सभी मत-पन्थों में, जिन्हें धर्म कहा जा रहा है, अधूरापन है। जिसके कारण इनको मानने वालों में संघर्ष होता रहा है और आगे भी होता रहेगा। तो मानव कल्याण का एकमात्र समाधान है— सही धर्म को मानना, जो कि मानवमात्र के लिए एक ही हो सकता है और वह है— वैदिक धर्म अर्थात् वेदानुकूल आचरण।

अन्तिम प्रश्न है कि क्या सभी मनुष्य वेद को मानने वाले हो सकते हैं? स्पष्ट उत्तर है— हाँ। इस 'हाँ' का आधार यह है कि सत्य बात मानने के अतिरिक्त कोई दूसरा विकल्प नहीं हो सकता। सुख का आधार तो केवल सत्याचरण है, दूसरा नहीं है। सभी मानव सुख चाहते हैं, तो अन्तिम विकल्प वेद को मानना ही है, क्योंकि वेद में सब सत्य है, झूठ कुछ भी नहीं है।

* * * * *

6. पर्यावरण और अग्निहोत्र—

पर्यावरण का मतलब है— अपने आप को छोड़कर जो भी आपके चारों ओर है, वह आपका पर्यावरण है। हमारे चारों ओर आकाश, हवा, पानी, पृथ्वी ये पर्यावरण के घटक हैं। दूसरे शब्दों में ऐसे भी कहा जा सकता है कि वनस्पति जगत् और जीव जगत् का आधार आकाश, हवा, पानी व जमीन हैं। इन चारों आधारभूत घटकों को इनकी प्राकृतिक अवस्था से विकृत करना इनका प्रदूषण है अर्थात् पर्यावरण प्रदूषण है।

अग्निहोत्र पर्यावरण को शुद्ध करता है। पर्यावरण शुद्धि का मतलब

है— वनस्पति व जीव के जीवनाधार हवा, पानी व भोजन को शुद्ध करना। जहाँ यह बात ठीक है कि कोई वनस्पति व जीव हवा, पानी व भोजन के बिना जीवित नहीं रह सकता, वहीं यह बात भी बराबर सत्य है कि हवा, पानी व भोजन के प्रदूषित होने पर जीवन संकट में पड़ जायेगा। अग्निहोत्र पर्यावरण के सभी घटकों को शुद्ध करता है, इसलिए अग्निहोत्र (हवन, होम, यज्ञ) को सर्वश्रेष्ठ कार्य माना गया है।

हवन से पर्यावरण कैसे शुद्ध होता है? इसका आधार यह है कि हवन सामग्री[१] और घी के जलने से जो भी गैसें बनती हैं, वे सब वायु के सभी प्रकार के प्रदूषण (रोगाणु, हानिकारक गैसें, विकिरण) को खत्म कर देती हैं। हवन समिधा (हवन में प्रयोग होने वाली लकड़ियाँ) के जलने से कुछ कार्बन डाइऑक्साइड गैस भी बनती है, जो जहरीली गैस नहीं है और इससे पेड़-पौधे अपना भोजन बना लेते हैं। समिधा के धुएँ से कार्बन मोनोऑक्साइड गैस बन सकती है, जो जहरीली गैस होती है। हवन से कार्बन मोनोऑक्साइड गैस पैदा न हो, इसके लिए हवन खुले स्थान पर किया जाता है, ताकि प्रचुर वायु की उपस्थिति में दहन अच्छी प्रकार से हो और कार्बन मोनोऑक्साइड गैस न बने। दूसरे हवन की समिधा के लिए उन वृक्षों (जाटी, आम, पलाश, बरगद, पीपल आदि) की लकड़ियाँ प्रयोग की जाती हैं, जिनमें कार्बन की मात्रा कम (28-32%) हो, ताकि कार्बन मोनोऑक्साइड गैस बनने की सम्भावना कम से कम हो। यदि अधिक कार्बन वाली (58-62%) लकड़ी समिधा (शीशम, बबूल आदि) के रूप में प्रयोग की जायेंगी, तो कार्बन मोनो-ऑक्साइड गैस बनने की सम्भावना अधिक होगी।

---

[1] सामग्री में पौष्टिक, सुगन्धित व औषधीय पदार्थ मिले होते हैं।

हवन सूर्योदय के बाद व सूर्यास्त से पहले किया जाता है, जिससे कुछ कार्बन डाइऑक्साइड गैस सूर्य के प्रकाश और जलवाष्प की सहायता से फॉर्मेल्डिहाइड गैस में बदल जाती है, जो रोगाणुनाशक है। हवन की गैसें वायुमण्डल में उपस्थित हानिकारक गैसों के प्रभाव को नष्ट कर देती हैं या बहुत सीमा तक उनके हानिकारक प्रभाव को कम कर देती हैं। हवन की गैसों में विकिरण को अवशोषित करने की क्षमता काफी ज्यादा होती है, तो हवन हमें विकिरण से होने वाले नुकसान से बचाता है। पानी का बड़ा स्रोत वर्षा है। यदि वायुमण्डल में काफी मात्रा में हानिकारक गैसें उपस्थित हैं, तो ये गैसें पानी में घुलकर जमीन में पहुँच जाती हैं और फसलों को नुकसान पहुँचाती हैं। हवन की गैसें हवा, पानी व जमीन को हानिकारक गैसों से बचाकर इनको साफ करती हैं। सभी अन्न, फल-सब्जी आदि हवा, पानी व जमीन से पैदा होते हैं और यदि ये साधन प्रदूषणरहित होंगे, तो भोजन भी शुद्ध होगा। हवन सभी जीवों और वनस्पतियों के जीवनाधार हवा, पानी और भोजन को शुद्ध करता है, इसलिए इसको सर्वश्रेष्ठ कार्य कहा है।

अग्निहोत्र बहुत सी बीमारियों को ठीक करने में भी सहायक है, क्योंकि हवन की गैसें जब श्वास के साथ फेफड़ों में जाती हैं, तो सीधे रक्त के सम्पर्क में आकर रक्त के हानिकारक प्रभावों (रक्त में मिले रोगाणु या अन्य हानिकारक घुले घटक) को कम करती हैं। वर्तमान में देश में प्रति वर्ष वायु प्रदूषण के कारण होने वाली बीमारियों से लगभग 11 लाख करोड़ रुपये का नुकसान होता है। यदि प्रतिदिन देश के प्रत्येक घर में हवन होने लगे, तो वायु प्रदूषण से होने वाली बीमारियों से छुटकारा मिल सकता है। प्रतिदिन प्रत्येक घर में हवन होने का सालाना खर्च लगभग 8 लाख करोड़ रुपये होगा, जो बीमारियों से होने वाले नुकसान

से कम है। ऋषि दयानन्द की दूरदर्शिता थी कि वे आज से 150 वर्ष पहले कह रहे हैं कि प्रत्येक घर में अग्निहोत्र होना चाहिए, नहीं तो वायु प्रदूषित हो जायेगी और अनेक प्रकार के रोग फैल जायेंगे। ऋषि की चेतावनी की अनदेखी का परिणाम आज हमारे सामने है।

* * * * *

7. डार्विन का विकासवाद—

सृष्टि में देखी जाने वाली भिन्न-भिन्न रचनाओं को बनाने वाली ईश्वर जैसी कोई सत्ता नहीं है, अपितु रचनाएँ बाहरी प्रभाव के कारण एक-दूसरे में रूपान्तरित हो जाती हैं। सभी रचनाएँ किसी सरलतम अवस्था के रूपान्तरित रूप हैं। जीव जगत् की सरलतम रचना एककोशिकीय जीव अमीबा से सभी रचनाएँ विकसित हुईं। यह विकास सरल रचना से जटिल रचना की ओर होता है। प्राणी जगत् व वनस्पति जगत् की सरलतम एककोशिकीय रचना परमाणुओं के अकस्मात् संघात का परिणाम है। चेतना का अलग से अस्तित्व नहीं है, अपितु पदार्थ के संयोग की अवस्था विशेष में चेतना पैदा हो जाती है।

डार्विन के इस विकासवाद के सिद्धान्त पर वैज्ञानिकों की बहुत सारी असहमतियाँ हैं। डार्विन के पुत्र जार्ज डार्विन और उनके साथी वैज्ञानिक अल्फ्रेड रसेल वालेस ने स्वीकार किया था कि जीवन क्या है, वे नहीं जानते। एबरडीन यूनिवर्सिटी के प्रो. जे.ए. टायसन और एडिनबरा यूनिवर्सिटी के प्रो. पैट्रिक गेडेस ने अपनी पुस्तक 'आइडिया ऑफ साइंस एण्ड फेथ' में, सिडनी कोलेट ने अपनी पुस्तक 'द स्क्रिप्चर ऑफ ट्रुथ' में, 'ट्रांजेक्शन्स ऑफ दी रॉयल सोसाइटी कनाडा' में मिस्टर होरेशियो

हेल और सर जे.डब्ल्यू. डावसन ने, पुस्तक 'प्रिंसिपल ऑफ जूलॉजी' में कई वैज्ञानिकों ने, पुस्तक 'इंट्रोडक्शन ऑफ साइंस' में जे. आर्थर थॉमसन, अमेरिका के बोस्टन में स्मिथसोनियन इंस्टिट्यूट के जीव विज्ञान के विभागाध्यक्ष डॉ. क्लार्क, प्रथम विश्वयुद्ध के समय मेलबोर्न में ब्रिटिश साइंस सोसाइटी के अधिवेशन के सभापति प्रो. विलियम वॉटसन, नासा के वैज्ञानिक ओ.पी. पाण्डेय (नवभारत टाइम्स 2.2.2018) इन सभी वैज्ञानिकों ने डार्विन के विकासवाद को विज्ञानसम्मत नहीं माना है। सर जे. डब्ल्यू डावसन 'मॉडर्न आइडिया ऑफ इवोल्यूशन' में, डे क्वाट्रेफेगस अपने 'लेस म्यूल्स डे डार्विन 2' में, 1922 के 'न्यू ऐज' नामक पत्र में जोन्स बोसन कहते हैं कि ब्रिटिश म्यूजियम के अध्यक्ष डॉ. ऐथ्रिज कहते हैं कि इस म्यूजियम में ऐसा कुछ भी ऐसा नहीं, जो यह सिद्ध करे कि जातियों में परिवर्तन हुआ है। वर्तमान में डॉ. संजय कुमार के वीडियो 'विज्ञान दर्शन' यू-ट्यूब चैनल पर उपलब्ध हैं।

वैसे तो डार्विन के विकासवाद पर ढेर सारी आपत्तियाँ हैं, परन्तु यहाँ कुछ आपत्तियों का जिक्र करते हैं। उड़ने की आवश्यकता होने पर पंख आये, तो मनुष्य भी अपनी उत्पत्ति के साथ से ही उड़ने की आवश्यकता महसूस करता रहा है, मनुष्य के पंख क्यों नहीं आये? शीत प्रदेशों में शरीर पर लम्बे बाल आने की बात की है, तो शीतप्रधान देशों के मनुष्यों के शरीर पर रीछ की तरह बाल क्यों नहीं होते? जिराफ की गर्दन लम्बी हुई, क्योंकि धरती पर घास सूख जाने पर पेड़ों की पत्तियाँ खाने के लिए गर्दन ऊँची करनी पड़ती थी, तो कितने वर्ष तक सूखा रहा और पेड़ों की पत्तियाँ हरी रहीं? पूँछ गायब होने पर बन्दर मनुष्य बन गया, तो बन्दर ने पूँछ से कौनसा काम लेना बन्द कर दिया, जिससे पूँछ गायब हो गई? तो फिर मनुष्य के नाक, कान, गायब होकर केवल छिद्र रहने चाहिए थे।

साँपों के पैर थे, धीरे-धीरे घिसकर गायब हो गये, तो अन्य पैर वाले प्राणियों के पैर क्यों नहीं घिसे? बिना अस्थि वाले जानवरों से अस्थि वाले कैसे बने? विकास मनुष्य पर जाकर क्यों रुक गया? क्या प्रकृति में विकास ही है, ह्रास नहीं है? मानव ने धीरे-धीरे बुद्धि का विकास कर लिया, तब बन्दर व अन्य प्राणियों ने क्यों नहीं किया? मानव जन्म के समय धरती पर केवल पशु-पक्षी ही थे, तब मानव ने उनका व्यवहार न सीखकर बौद्धिक विकास कैसे कर लिया? दीपक से जलता पतंगा करोड़ों वर्षों में यह नहीं जान पाया कि दीपक जला देगा और मानव बन्दर से इतना विकास कर गया कि चाँद पर जा पहुँचा।

भिन्न जाति मिलकर सन्तान पैदा नहीं कर सकती और सन्तान पैदा हुई, तो आगे वंश नहीं चलता। गाय, भैंस, ऊँट, हाथी, घोड़ा सब शाकाहारी हैं और एक जैसी परिस्थिति में रहने वाले जानवर हैं, तो फिर कैसे किसी के पंजे के पाँच हिस्से, किसी के चार, किसी के दो और किसी के पाँचों मिलकर एक हिस्सा बन गया। एक ही परिस्थिति होने पर भी स्त्रियों के दाढ़ी-मूँछ, मयूरी की लम्बी पूँछ, मुर्गी के सिर पर कलगी और हथिनी के दाँत क्यों नहीं होते? घोड़े के स्तन क्यों नहीं, बैल के स्तन अण्डकोशों के पास क्यों और पुरुषों के स्तन किसलिए? घोड़े के पैर में परों के चिह्न क्यों? पंख वाले प्राणी सर्पणशीलों के बाद होने चाहिए, तो कृमियों में पंख कैसे हो गये? यदि यन्त्र के सिद्धान्त पर प्राणियों का विकास हुआ, तो मनुष्य की आयु सर्प व कछुओं से कम क्यों रह गई?

अन्त में एक मौलिक प्रश्न है कि यदि एककोशिकीय जीव अमीबा परमाणुओं के अकस्मात् (बाय चांस) मेल से बन सकता है, तो मनुष्य

समेत अन्य शरीरधारियों के शुक्राणु व अण्डज परमाणुओं के अकस्मात् मेल से क्यों नहीं बन सकते? जबकि अमीबा की बनावट इन शुक्राणुओं व अण्डजों की बनावट से सरल नहीं है। डार्विन का विकासवाद सिद्धान्तसम्मत न होने पर भी हमारे देश में स्कूल से लेकर यूनिवर्सिटी तक इसे एक सिद्धान्त के रूप में माना व पढ़ाया जाता है। इसका कारण बौद्धिक दासता है, जो अपनी वैदिक जानकारी से दूर हटने के कारण आई। इस दासता से छुटकारा केवल वेद की ओर लौटने से ही मिलेगा।

* * * * *

8. मनुष्य मांसाहारी या शाकाहारी—

मनुष्य के भोजन के बारे में डॉक्टरों, धर्मगुरुओं, अर्थशास्त्रियों या मनोवैज्ञानिकों से पूछते हैं, तो मांसाहार-शाकाहार दोनों प्रकार के भोजन के बारे में हानि-लाभ की बातें कही जाती हैं। यदि हम यह निश्चित करना चाहें कि मूल रूप से मनुष्य मांसाहारी है या शाकाहारी है, तो हमें निश्चित उत्तर नहीं मिलता। हम सृष्टि में दो प्रकार के जीव देखते हैं, जो केवल या तो मांसाहारी (शेर, चीता, तेंदुआ, भेड़िया) हैं या केवल शाकाहारी (गाय, बकरी, हाथी, घोड़ा, ऊँट, भैंस आदि) हैं। ये जानवर मर जायेंगे, परन्तु विपरीत भोजन नहीं करेंगे। कुछ तथाकथित वैज्ञानिक एक श्रेणी और बनाते हैं, जिसका नाम सर्वभक्षी है अर्थात् मांसाहारी और शाकाहारी दोनों प्रकार के भोजन को करने वाले प्राणी और उदाहरण देते हैं— कुत्ता, बिल्ली, भालू आदि का। सर्वभक्षी कोई श्रेणी नहीं है, अपितु यह एक परिस्थिति का परिणाम है और इसी को आधार मानकर मनुष्य को इस श्रेणी में डालकर मांसाहार को भी मनुष्य का भोजन मानते हैं।

कुत्ते-बिल्ली का वास्तव में भोजन क्या है, यह तय करने वाले हम कौन होते हैं, अपने भोजन का निर्णय तो वे स्वयं करेंगे। कुत्ता, बिल्ली अपना भोजन क्या मानते हैं, इसको जानने के लिए एक स्थान पर दोनों प्रकार का भोजन रख दीजिये और वहाँ कुत्ते या बिल्ली को जाने दीजिये, वह स्वयं बता देगा कि उसका भोजन क्या है। हाँ, यहाँ एक बात अवश्य सिद्ध होती है कि मांसाहारी जीव शाकाहारी भोजन पर भी जीवित रह सकते हैं, परन्तु शाकाहारी मांसाहार पर जीवित नहीं रह सकते, तो शाकाहार मांसाहार से अधिक मौलिक भोजन है। मनुष्य मूल रूप से शाकाहारी है या मांसाहारी है, इसका निश्चित उत्तर हम कुछ मौलिक बातों के आधार पर करेंगे, जिनको नकारने की औकात किसी की भी नहीं होती। ये मौलिक बातें हैं—

1. जड़ यन्त्र को चलाने के लिए ईंधन और जीवित शरीर को चलाने के लिए भोजन उसकी बनावट के हिसाब से होता है।
2. उपयुक्त ईंधन या भोजन (जो बनावट के हिसाब से तय है) न मिलने पर कार्य दक्षता कम हो जाती है और यन्त्र या शरीर शीघ्र ही खराब हो जाता है।
3. ईंधन वह पदार्थ है, जिसको यन्त्र में डालने से यन्त्र कार्य करता है और भोजन वह पदार्थ है, जिसको शरीर में डालने से शरीर जीवित रहता है।
4. सभी जीवधारियों के शरीर ईश्वर ने बनाये हैं। यदि आप ईश्वर को नहीं मानते, तो प्रकृति (कुदरत या नेचर) ने बनाये हैं, किसी वैज्ञानिक, धर्मगुरु, अर्थशास्त्री या मनोवैज्ञानिक ने नहीं बनाये।

5. हम अपने चारों ओर दो प्रकार के शरीर देखते हैं, जो या तो मांसाहारी होते हैं या शाकाहारी होते हैं, परन्तु भोजन शरीर की बनावट के हिसाब से होता है।

हम मनुष्य का भोजन उपरोक्त मौलिक बातों के आधार पर तय करते हैं, तो सबसे पहले शरीर की बनावट आती है। मांसाहारी और शाकाहारी शरीरों की तुलना करते हैं, तो मनुष्य शरीर की बनावट शत-प्रतिशत शाकाहारी शरीरों से मेल खाती है, न कि मांसाहारियों के साथ। भोजन बनावट के हिसाब से होता है, तो मनुष्य पूर्ण रूप से शाकाहारी हुआ। दूसरी मौलिक बात यह है कि बनावट के हिसाब वाले भोजन से हटकर भोजन लेते हैं, तो कार्य क्षमता घट जायेगी और शरीर शीघ्र खराब हो जायेगा। यह एक सिद्ध तथ्य है कि शाकाहारियों की कार्य क्षमता व आयु मांसाहारी व्यक्तियों से अधिक होती है। क्योंकि यन्त्र या शरीर को बनाने वाला बनावट के हिसाब से ईंधन या भोजन तय करता है। सभी शरीर ईश्वर ने या कुदरत ने बनाये हैं, तो इनका भोजन भी ईश्वर या कुदरत ने मांसाहार या शाकाहार तय किया है। फिर मनुष्य की क्या औकात है कि वह किसी भी बहाने से विपरीत भोजन की सिफारिश करे। मनुष्य की जानकारी ईश्वर या कुदरत से अधिक नहीं हो सकती।

भोजन की परिभाषा के अनुसार मांसाहारी शरीर मांसाहार के सहारे 12-15 वर्ष जीवित रहते हैं। यदि मांसाहार मनुष्य का भोजन मानें, तो मनुष्य को मांसाहार पर जीवित रहना चाहिए। वर्षों की बात छोड़िये, मनुष्य मांसाहार पर 3-4 महीने से अधिक जिन्दा नहीं रह सकता। उपरोक्त मौलिक बातों के आधार पर मनुष्य का भोजन निश्चित रूप से शाकाहार है, मांसाहार कतई नहीं है। अण्डा मांसाहार है या शाकाहार,

इसका निर्णय इस तथ्य के आधार पर करेंगे कि सभी शाकाहारी भोजन के प्रकार अन्न, फल, सब्जी, दूध आदि में कार्बोहाइड्रेट अनिवार्य रूप से पाया जाता है, लेकिन अण्डे व मछली में कार्बोहाइड्रेट नहीं होता, इसलिए अण्डा व मछली मांसाहार में आते हैं, शाकाहार में नहीं।

भोजन के शारीरिक पक्ष के साथ आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, मनोवैज्ञानिक व पर्यावरण वाले पहलू भी जुड़े होते हैं। मांसाहार मनुष्य के लिए शारीरिक दृष्टि के साथ-साथ उपरोक्त किसी भी पहलू की दृष्टि से उपयुक्त नहीं है। वर्तमान में मानवता के सामने भुखमरी और पर्यावरण प्रदूषण की समस्या सबसे बड़ी समस्याएँ हैं। मांसाहार इन दोनों समस्याओं को बढ़ाने वाला है। धरती पर 8 अरब जनसंख्या में 1.2-1.3 अरब लोगों को भरपेट भोजन नहीं मिलता। 10% मांसाहार कम करने से इन लोगों को भरपेट भोजन मिल सकता है। ग्लोबल वार्मिंग में बिजली उत्पादन व यातायात के बाद 18% योगदान मांसाहार का ही है। वेद में मनुष्य का भोजन मांसाहार कहीं नहीं माना है, तो मनुष्य मूल रूप से शाकाहारी है, मांसाहारी नहीं है।

* * * * *

9. ऊर्जा का शुद्धतम रूप—

कार्य करने की क्षमता का नाम ऊर्जा है। कार्य करने के विभिन्न कारक ऊर्जा के विभिन्न रूप हैं, जैसे यान्त्रिक ऊर्जा, ऊष्मीय ऊर्जा, विद्युत् ऊर्जा, परमाणु ऊर्जा, खनिज ईंधनों से मिलने वाली ऊर्जा व पेशीय ऊर्जा अर्थात् शरीर के माध्यम से कार्य करना आदि। ऊर्जा के जितने भी स्रोत हैं, वे जब ऊर्जा देते हैं, तो ऊर्जा देने की प्रक्रिया हमारे पर्यावरण,

वायु, जल, जमीन, आकाश आदि पर कुछ दुष्प्रभाव डालती है। जिस प्रक्रिया का दुष्प्रभाव जितना ज्यादा और दीर्घकालीन होगा, वह उतनी ही अशुद्ध होगी और कम से कम दुष्प्रभाव और अल्पकालीन प्रभाव वाली प्रक्रिया ही ऊर्जा का शुद्ध रूप होगा।

हम ऊर्जा से विभिन्न कार्य करते हैं, जिनसे जीवन में सुविधा मिलती है और ऊर्जा पैदा करने की प्रक्रिया जो दुष्प्रभाव डालती है, उससे असुविधा पैदा होती है। ऊर्जा का कौनसा रूप सुविधा-असुविधा का बैलेंस किधर रखता है, यह बतायेगा कि ऊर्जा का शुद्धतम रूप किसे कहें। इस पैमाने के आधार पर पेशीय ऊर्जा अर्थात् शरीर द्वारा कार्य करना ऊर्जा का शुद्धतम रूप है। विद्युत् ऊर्जा एवं परमाणु ऊर्जा, जिनको आम जन ऊर्जा का शुद्ध रूप मानते हैं, ऐसा मानना ठीक नहीं है, क्योंकि विद्युत् को पैदा करने में जो ईंधन, कोयला, तेल, गैस आदि जलाते हैं, वे वायु व जमीन को काफी प्रदूषित करते हैं। परमाणु ऊर्जा पैदा करने में भी बहुत दीर्घकालीन विकिरण प्रदूषण होता है।

खनिज ईंधन तो स्पष्ट रूप से दुष्प्रभाव पैदा करते ही हैं। वर्तमान में खनिज ईंधनों, कोयला, तेल, गैस आदि से ऊर्जा लेने के कारण जो सबसे बड़ा दुष्प्रभाव पैदा हो रहा है, वह है— ग्लोबल वार्मिंग। धरती के घेरे का तापक्रम बढ़ रहा है, जिसके परिणामस्वरूप जलवायु भयंकर रूप से प्रभावित हो रहा है। आई.आई.टी. मुम्बई के प्रो. चेतन सिंह सोलंकी, जो ऊर्जा के क्षेत्र के विश्वप्रसिद्ध व्यक्ति हैं, के अनुसार यदि हम खनिज ईंधनों का प्रयोग वर्तमान दर से आने वाले 6-8 वर्षों तक करते रहे, तो ग्लोबल तापक्रम की वृद्धि 1.5 डिग्री सेल्सियस से ज्यादा हो जायेगी, जिसको वापिस नीचे लाना काबू से बाहर हो जायेगा और परिणामस्वरूप

धरती से मानव का खात्मा लगभग तय है।

प्रो. सोलंकी विकल्प के रूप में सौर ऊर्जा का प्रयोग बताते हैं, परन्तु साथ ही सावधान करते हैं कि सौर ऊर्जा का प्रयोग भी बहुत आवश्यक कार्यों में ही करें अर्थात् सीमित प्रयोग करें, नहीं तो सोलर पैनल्स व बैटरियों का इतना कचरा बन जायेगा कि इनके पहाड़ बन जायेंगे और रहने को स्थान नहीं बचेगा। इस दृष्टि से देखें, तो पेशीय ऊर्जा सबसे शुद्ध ऊर्जा है और हमें अधिक से अधिक कार्य पेशीय ऊर्जा से करने चाहिये। धरती पर करोड़ों वर्षों से इस ऊर्जा से जीवन चलता रहा है और आगे भी चल सकता है, क्योंकि यह ऊर्जा नवीकरणीय है, जबकि ऊर्जा के दूसरे विकल्प नवीकरणीय नहीं हैं।

* * * * *

10. कृषि—

'उत्तम खेती मध्यम व्यापार, नीच नौकरी भीख निदान' यह कहावत दीर्घकालीन अनुभव का परिणाम है। मनुष्य जड़ और चेतन का मेल है। जड़ की भौतिक आवश्यकताएँ हैं और चेतन की अभौतिक आवश्यकताएँ हैं। भौतिक आवश्यकताओं में रोटी, कपड़ा, मकान मुख्य हैं और अभौतिक आवश्यकताओं में आत्मिक सन्तुष्टि सर्वोपरि है। आत्मिक सन्तुष्टि के लिए दूसरों पर कम से कम निर्भर होना मुख्य है। कृषि रोटी, कपड़ा, मकान देने के साथ दूसरों पर निर्भरता को कम से कम करती है, इसलिए कृषि सबसे उत्तम है। व्यापार ग्राहक के बिना नहीं चल सकता, तो कृषि से नीचे आता है, क्योंकि व्यापार ग्राहक पर निर्भर है। नौकरी दूसरों पर निर्भर भी है और दूसरों से नियन्त्रित भी है, इसलिए व्यापार से

नीचे आती है। भीख माँगना दूसरों पर निर्भर तो है ही, भीख माँगने पर मिलेगी या नहीं, इसका भी भरोसा नहीं होता। इसलिए इसे सबसे निकृष्ट माना गया है। कृषि के महत्त्व के कुछ बिन्दु इस प्रकार हैं—

1. कृषि उत्पाद के बिना जीवन नहीं चल सकता, जबकि किसी अन्य उद्योग-धन्धे के बिना जीवन चल सकता है। आज से 125-150 वर्ष पहले उद्योग-धन्धे नहीं थे, तब भी जीवन चलता था, बल्कि जीवन की गुणवत्ता आज से अच्छी थी।
2. कृषि पर्यावरण मित्र है, जबकि दूसरे किसी भी प्रकार के धन्धे पर्यावरण को दूषित करते हैं।
3. कृषि न केवल मानव जीवन की सहायक है, अपितु दूसरे पशु-पक्षियों के जीवन की भी सहायक है, जबकि दूसरे उद्योग-धन्धों के कारण पशु-पक्षियों का जीवन संकट में पड़ता है।
4. कृषि दूसरे धन्धों के मुकाबले कम ऊर्जा खर्च करती है, जिससे प्राकृतिक संतुलन को कम से कम नुकसान होता है। कृषि खनिज ईंधन, कोयला, गैस, तेल, यूरेनियम के बिना सम्भव है, जबकि दूसरे धन्धे खनिज ईंधनों के बिना सम्भव नहीं हैं। कृषि केवल पेशीय ऊर्जा से सम्भव होने के कारण शाश्वत है और इससे पर्यावरण के साथ स्थायी संतुलन बना रहता है, जबकि दूसरे धन्धों में यह सम्भव नहीं है।
5. कृषि आर्थिक असमानता पैदा नहीं करती, जबकि उद्योग-धन्धे आर्थिक असमानता पैदा करते हैं।
6. रोजगार जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण समस्या है। कृषि किसी भी

उद्योग-धन्धे के मुकाबले कई गुणा रोजगार देती है।

7. कृषि मनुष्य को प्रकृति से जोड़ती है। उद्योग-धन्धे मनुष्य को प्रकृति से दूर ले जाकर जीवन को अप्राकृतिक बनाते हैं।
8. यदि हम ईश्वर व वेद को मानते हैं, तो वेद कृषि को सबसे महत्त्वपूर्ण कहता है। वैदिक संस्कृति में कृषि का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है।
9. कृषि और कृषि से जुड़े कार्य (जुताई, लकड़ी कार्य, चर्म कार्य) शाश्वत हैं, जबकि अन्य उद्योग-धन्धे शाश्वत नहीं हैं।
10. अग्निहोत्र जैसा सर्वश्रेष्ठ कार्य कृषि के बिना सम्भव नहीं हो सकता जबकि इसके लिए अन्य किसी उद्योग-धन्धे की आवश्यकता नहीं है।

* * * * *

11. हरित क्रान्ति—

हथियार उद्योग बहुत बड़ा धन्धा है। दूसरे विश्व युद्ध में विश्व के लगभग सभी विकसित देश इस युद्ध की चपेट में थे। बहुत बड़े स्तर पर युद्ध सामग्री तैयार की गई थी। 1945 में जापान पर दो परमाणु बम डालने से युद्धविराम की स्थिति आ गई। परमाणु बम बनाने व डालने की प्रक्रिया अत्यन्त गोपनीय थी। हथियार बनाने वाले लोगों को क्या पता था कि विश्व स्तर का युद्ध एकदम बन्द हो जायेगा, तो हथियार बनाने वाली फैक्ट्रियों में विशाल मात्रा में जो गोला-बारूद तैयार किया गया था, उसका क्या किया जाये? हथियार उद्योग के पूंजीपतियों ने वैज्ञानिकों को यह कार्य सौंपा कि युद्ध सामग्री का क्या उपयोग हो सकता है?

10–12 वर्ष के अनुसन्धान के परिणामस्वरूप यह बताया गया कि युद्ध सामग्री को रासायनिक खाद के रूप में कृषि कार्यों में प्रयोग किया जा सकता है। अमेरिका में रासायनिक खाद का कृषि में प्रयोग 1955–60 के दौर में आरम्भ हुआ। दुनिया के दूसरे देशों में इसके प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए कृषि विश्वविद्यालयों को स्थापित किया गया और इनको अनुदान दिया गया। बाद के समय में रासायनिक खाद, कीटनाशक और संशोधित बीज आदि का व्यापार स्थापित हुआ। रासायनिक खेती को बढ़ाने के लिए पारम्परिक खेती को हतोत्साहित किया गया और अन्न की कृत्रिम कमी का प्रचार किया गया। इसी नीति के तहत बहुत देशों में रासायनिक खेती आरम्भ हुई। भारत में रासायनिक खेती 1965–70 में आरम्भ हुई।

जैसे अंग्रेजी दवा (एलोपैथिक दवा) बहुत शीघ्र प्रभाव दिखाती है, उसी प्रकार रासायनिक खेती (रासायनिक खाद, कीटनाशक, हाइब्रिड बीज) से कृषि उत्पाद तेजी से बढ़ा। इसी आरम्भिक बढ़ोतरी को हरित क्रान्ति का नाम दिया गया। जैसे एलोपैथिक दवाओं के अधिक व ज्यादा समय तक प्रयोग करने पर इन दवाओं के दुष्परिणाम सामने आते हैं, जैसे दवा का प्रभाव कम होना और दूसरी बीमारी का पैदा होना, ठीक वैसा ही रासायनिक खेती के साथ हुआ। मात्र 25–30 वर्ष में उत्पादन बढ़ोतरी पर विराम लगा और फसलों पर नई–नई बीमारियों का प्रकोप आरम्भ हुआ। उत्पादन बढ़ाने के लिए और बीमारियों को रोकने के लिए अधिक और अधिक रासायनिक खाद व कीटनाशकों का प्रयोग करना विवशता बन गई। कृषि को नियन्त्रित करने और मुनाफा बढ़ाने के लिए नई–नई दवाइयाँ, संशोधित बीज (जी.एम. बीज) आदि के प्रयोग को बराबर बढ़ाया गया।

इस प्रक्रिया के दो दुष्परिणाम अब हमारे सामने हैं। पहला है— खेती की बढ़ती लागत, जिसने किसान की कमर तोड़ दी है और दूसरा है— बढ़ती कैंसर की बीमारी, जिसने समूची जनता को चपेट में ले लिया है। ये थी हरित क्रान्ति और इसके तोहफे। अब वही कृषि वैज्ञानिक, जिन्होंने रासायनिक खेती का ढोल पीटा था, रासायनिक खेती की जगह जैविक खेती की बात कर रहे हैं। 1965 से पहले जैविक खेती होती थी। अनाज की कमी का बहाना बनाया गया और रासायनिक खेती को बढ़ाया गया। अब 1965 के मुकाबले जनसंख्या 2.5 गुणा है और खेती की जमीन आधी रह गई है। अब इन तथाकथित वैज्ञानिकों से पूछें कि जैविक खेती, जो पहले पेट नहीं भर पाई, अब कैसे पेट भरेगी? इन बौद्धिक दासों के पास इसका कोई उत्तर नहीं है।

* * * * *

12. गाय—

अन्न, फल, सब्जी मनुष्य का भोजन है और इनके भूसे व छिलके पशुओं का भोजन है। अन्न, फल, सब्जी कृषि उत्पाद हैं। इन उत्पादों का बराबर उत्पादन होता रहे, इसके लिए भूमि की उपजाऊ शक्ति का बना रहना आवश्यक है। उपजाऊ शक्ति के लिए खाद की आवश्यकता होती है, जो पशुओं से मिलता है। अच्छी खेती के लिए हवा-पानी का साफ होना भी आवश्यक है, नहीं तो फसल को बीमारी लगेगी और उत्पादन गिरेगा। हवा, पानी व जमीन के स्वास्थ्य का सम्बन्ध खाद व जुताई-ढुलाई से जुड़ा हुआ है और पशुओं का खाद व पशुओं द्वारा जुताई-ढुलाई इसमें बहुत बड़े सहायक हैं। भोजन और ऊर्जा मनुष्य जीवन की आधारभूत आवश्यकताएँ हैं। गाय दूध द्वारा भोजन, गोबर के

खाद द्वारा अन्न, फल, सब्जी का उत्पादन और बैल द्वारा जुताई-ढुलाई से ऊर्जा को उपलब्ध करवाने के कारण सभी पशुओं से अधिक उपयोगी है।

गाय की उपयोगिता सभी पशुओं से अधिक होने और मनुष्य जीवन की मूलभूत आवश्यकताएँ भोजन व ऊर्जा उपलब्ध करवाने के कारण गाय को पूज्य माना गया है और वेद में गाय को अघ्न्या (जिसका वध न किया जा सके) कहा गया है। गाय का पालन जीवन का सहयोगी है और गाय की उपेक्षा या गाय का वध जीवननाशक है। वैदिक जीवन-शैली में अग्निहोत्र को सर्वश्रेष्ठ कार्य माना गया है। अग्निहोत्र घी और सामग्री के बिना नहीं हो सकता। सामग्री कृषि उत्पाद है और घी गाय उत्पाद है। कृषि और गाय एक-दूसरे पर आश्रित हैं, ये एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। अग्निहोत्र वायु, जल व जमीन को शुद्ध करता है, भोजन वायु, जल और जमीन से पैदा होता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कृषि, गाय, अग्निहोत्र और मनुष्य जीवन, ये सब एक-दूसरे पर आश्रित हैं अर्थात् जुड़े हुए हैं। इस शृंखला की एक कड़ी भी कमजोर होती है या हटा दी जाती है, तो जीवन संकट में पड़ना तय है। गाय जीवन चलाने में एक कड़ी का स्थान रखती है, यही गाय का महत्त्व है। गाय की उपेक्षा या गाय का वध निश्चित रूप से आत्मघाती है। एक ओर गाय का नाम लेना, गाय को माता कहना और वहीं दूसरी ओर गाय की उपेक्षा करना, गाय के वध में सहायक होना, इससे बड़ा पाखण्ड, ढोंग या पाप दूसरा नहीं हो सकता। वर्तमान में गाय की दयनीय दशा का मुख्य कारण यही ढोंग-पाखण्ड है। वेद गाय व कृषि को सबसे अधिक महत्त्व देता है। वेद एवं वैदिक संस्कृति का नाम

लेना और कृषि व गाय को हतोत्साहित करना सबसे बड़ा पाखण्ड है। वर्तमान में तथाकथित गोभक्तों व सनातन वैदिक परम्परा का दिखावा करने वालों के शासन में यही सब कुछ हो रहा है। 2014 में मांस उत्पादन व निर्यात में भारत तीसरे स्थान पर था और अब 2023 में मांस निर्यात में प्रथम स्थान पर है।

* * * * *

13. कृषि, पर्यावरण और वेद—

कृषि के बारे में वेद में बहुत कुछ कहा गया है। कृषि के महत्त्व और उत्तम खेती के लिए क्या आवश्यक है, सारांश रूप में कुछ निर्देश निम्न प्रकार से हैं—

1. अथर्ववेद 12.1.8 में कहा है कि उत्तम खेती के बिना कोई राष्ट्र बलवान नहीं बन सकता।
2. अथर्ववेद 12.1.12 में कहा है कि पृथ्वी मेरी माता है, मैं पृथ्वी का पुत्र हूँ, वर्षा मेरा पिता है, वह हमारा पोषण करे।
3. अथर्ववेद 12.1.13 में कहा है कि जो भूमि को समृद्ध बनाती है, वही मुझे समृद्ध बनाये।
4. अथर्ववेद 12.1.43 में कहा है कि जिसके वक्षस्थल पर बड़े-बड़े नगर बसते हैं और जिस पर कृषकगण खेती करते हैं, जिसके गर्भ में सब प्रकार के पोषक तत्त्व हैं, जगत् पिता परमात्मा उस भूमि को हमारे रहने योग्य बनाये।
5. ऋग्वेद के एक सम्पूर्ण सूक्त 10.101.3-6 में कृषि का वर्णन है।

6. ऋग्वेद 10.101.3 में कहा है कि हमारे लिए औषधियाँ मधुर गुण वाली हों, सब भूमि अन्नों से युक्त हों, नदियाँ मधुर जल वाली हों, अन्तरिक्ष मधुर जलयुक्त हो, खेत अन्नों से युक्त हों।
7. अथर्ववेद 3.14.3 में गोबर की खाद द्वारा भूमि को उर्वरा बनाने की बात कही है।
8. अथर्ववेद 12.1.7 में वैज्ञानिकों और कृषकों को प्रेरणा दी गई है कि उन्हें अपनी भूमि की शक्ति पर विशेष ध्यान रखना चाहिए।
9. यजुर्वेद 12.13 में कहा है कि हमें विभिन्न अन्न कृषि से प्राप्त हों।
10. ऋग्वेद 5.53.13 में उत्तम बीजों के संरक्षण पर बल दिया है।

पर्यावरण के बारे में वेद के निर्देश—

1. यजुर्वेद 22.22 में दुधारू गायों और जुताई-ढुलाई वाले पशुओं की प्रार्थना[2] की गई है। भोजन व ऊर्जा जो हमारी सबसे महत्त्वपूर्ण आवश्यकताएँ हैं, वे गायों-बैलों के माध्यम से पूरी करने की बात कही है। यह पर्यावरण की दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि ऊर्जा के अन्य साधन सीमित हैं और प्रदूषण बढ़ाने वाले हैं।
2. यजुर्वेद 36.17 में द्युलोक, अन्तरिक्ष व पृथ्वी की शान्ति की प्रार्थना के साथ पृथ्वी पर जल, वनस्पति, औषधि आदि सभी की शान्ति की प्रार्थना है। ये शान्त कैसे रहेंगे, तो यह तभी सम्भव है, जब किसी भी प्रकार का प्रदूषण न हो।
3. शतपथ ब्राह्मण में 'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म' कहा है। यह इसलिए कि

[2] जिसे राष्ट्रीय प्रार्थना के रूप में जाना जाता है।

अग्निहोत्र से सभी जड़ देवता जैसे— वायु, जल, पृथ्वी, आकाश आदि, जो हमारे जीवन के आधार हैं, शुद्ध होते हैं। वेद में जल, वायु एवं भूमि के संरक्षण और इन्हें शुद्ध रखने पर बल दिया गया है।

4. ऋग्वेद 4.57.8 में कहा है कि मेघ मधुर अन्न से और जलों से पूर्ण होकर बरसें।
5. अथर्ववेद के 12वें काण्ड के सूक्त 1 में मन्त्र 4, 6, 10, 11 में अच्छी भूमि के लिये प्रार्थना की गई है। कहीं पर भी इनके प्रदूषण या अनुचित दोहन की बात नहीं कही गई है।

यह भी सत्य है कि कृषि दूसरे धन्धों के मुकाबले पर्यावरण मित्र है। कृषि में गाय का बहुत बड़ा योगदान है, इसलिए वेद में गाय, कृषि और पर्यावरण को बहुत महत्त्व दिया गया है, क्योंकि ये जीवन के आधार हैं।

* * * * *

14. निजीकरण और वेद—

देश में 2014 से 2024 तक सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र के कार्यों का निजीकरण किया या बन्द किया और हर प्रकार के संसाधनों के निजीकरण पर बल दिया और इसके साथ ही विदेशी निवेश को बढ़ाने का हर प्रकार का प्रयास किया। निजीकरण व विदेशी निवेश का विरोध क्यों करें, इसके लिए कुछ बातों पर विचार कर लेना अति आवश्यक है—

1. निजी धन्धा कोई भी हो और उसको कोई भी कर रहा हो, इसका एक सिद्धान्त है कि कम से कम लोगों से कम से कम पारिश्रमिक पर ज्यादा से ज्यादा कार्य लेना। इस सिद्धान्त का सीधा परिणाम है— रोजगार के अवसर घटना। रोजगार जीवन की मूल समस्या है, क्योंकि रोजगार के बिना जीवन नहीं चल सकता, तो निजीकरण आम जन के अस्तित्व के विपरीत है।

2. निजीकरण से संसाधनों का केन्द्रीकरण होता है, जिसका परिणाम गैरबराबरी को बढ़ाना है। जहाँ भी जितनी अधिक गैरबराबरी होगी, उतना ही अधिक असंतोष पैदा होगा। जहाँ जितना ज्यादा असंतोष होगा, जीवन उतना ही अधिक अव्यवस्थित होगा। तो निजीकरण असंतोष पैदा कर के व्यक्ति के साथ समाज के जीवन को भी अस्थिर करता है।

3. निजीकरण संविधान के विरुद्ध है, क्योंकि संविधान में देश के संसाधनों पर स्वामित्व देश के नागरिकों का माना गया है, न कि देश के संसाधनों के मालिक चन्द धनपति या कुछ कम्पनियाँ हैं।

4. निजीकरण व विदेशी निवेश हमारे इतिहास के विरुद्ध हैं। इतिहास गवाह है कि एक ईस्ट इंडिया कम्पनी कैसे संसाधनों को हथियाकर देश की मालिक बन बैठी थी, जिसको हटाने में लाखों बलिदान देने पड़े थे और 200 वर्ष का समय लगा था। अब क्या सरकार निजीकरण व विदेशी निवेश को बढ़ाकर ईस्ट इंडिया कम्पनी के इतिहास को दोहराकर देश को गुलामी की तरफ नहीं धकेल रही है? सिद्धान्त है कि जो संसाधनों के मालिक हैं, राज्य सत्ता उन्हीं के हाथों में होती है।

5. निजीकरण संसाधनों का लालच बढ़ाकर व्यक्ति को नास्तिक बनाता है, क्योंकि संसाधन किसी की बपौती न होकर ईश्वर के दिये हैं, जिन पर सबका बराबर अधिकार है।

6. यह तर्क देना ठीक नहीं है कि सार्वजनिक उपक्रम को तब बन्द किया जाता है या निजीकरण तब किया जाता है, जब वह घाटे में चल रहा होता है, क्योंकि ऐसी स्थिति के कारण हैं, जैसे सार्वजनिक उपक्रमों की सरकारों और नौकरशाहों द्वारा उपेक्षा, साधनों व सुविधाओं की कमी, किसी राजनेता या अन्य किसी निजी एजेंसी का निहित स्वार्थ और प्रत्येक स्तर पर राष्ट्रीय भावना की कमी। ये कारण ऐसे नही हैं, जिनको नहीं हटाया जा सकता। कुछ ऐसे सार्वजनिक उपक्रमों का भी निजीकरण किया जा रहा है, जो घाटे में नहीं हैं। यहाँ यह भी ख्याल रखना आवश्यक है कि सरकार का उद्देश्य केवल लाभ कमाना नहीं है, जनहित करना मुख्य है।

7. ऋग्वेद 10.117.6 कहता है कि तू बिना परिश्रम का अन्न मत खा, यह तेरा सत्यानाश कर देगा और आगे कहा कि तू अकेला मत खा, अकेला खाने वाला पाप खाता है। शतपथ ब्राह्मण में कहा है कि औरों के भूखे रहते अकेले खाना राक्षसवृत्ति है। ऋग्वेद 10.117.1 कह रहा है कि देश में कोई भी भूखा-प्यासा न रहे। अथर्ववेद 3.24.5 में कहा है कि परोपकार के कार्यों में दिल खोलकर दान करो। यजुर्वेद 40.1 में कहा— जगत् की प्रत्येक वस्तु में ईश्वर व्यापक है। दूसरे के पदार्थों को अन्याय से लेने की इच्छा मत कर। ये संसाधन ईश्वर के दिये हैं, इनका त्यागपूर्वक भोग कर।

उपरोक्त वेद मन्त्रों से दो निष्कर्ष सामने आये। पहली बात सृष्टि

रचना ईश्वर ने की, तो मानवसहित सभी जीवधारी ईश्वर की सन्तान हुई। सन्तान होने के नाते सभी संसाधन जो जीवन चलाने के लिए ईश्वर ने दिये हैं, उन पर सभी जीवों का बराबर अधिकार है। दूसरे वेद कह रहा है कि तू बिना परिश्रम का अन्न मत खा अर्थात् किसी का शोषण मत कर। परिश्रम करके अर्जित कमाई को अकेले खाने की अपेक्षा दूसरों से साझा कर। दूसरों से साझा करने पर भी बहुत कुछ बच जाता है, तो परोपकार के कार्यों में सहयोग कर। परोपकार में खर्च करने के बाद भी जो तुम्हारे पास है, उसका त्यागपूर्वक भोग कर, अपव्यय न कर और न व्यर्थ दोहन कर, क्योंकि संसाधन तेरी बपौती नहीं हैं, ये ईश्वर के दिये हैं।

वेद के इन स्पष्ट निर्देशों के होते हुए भी संसाधनों का निजीकरण करके दुरुपयोग करना, संसाधनों का अति दोहन करना, निजीकरण द्वारा साधनों का केन्द्रीकरण करना वेद की स्पष्ट उपेक्षा और वेदविरुद्ध है, ऐसे कानून, नीति या व्यवस्था बनाने वाले आस्तिक व वेद को मानने वाले नहीं हो सकते। वेद निजीकरण द्वारा संसाधनों का केन्द्रीकरण करने की अनुमति नहीं देता।

* * * * *

15. पूँजीवाद व साम्यवाद में समानता—

वर्तमान में दुनिया को आर्थिक व राजनैतिक विचारधारा के नाम पर दो खेमों में बाँट रखा है। एक खेमे को पूँजीवादी व दूसरे को साम्यवादी व्यवस्था वाला कहा जाता है। कुछ गहराई से देखने पर स्पष्ट होता है कि दोनों व्यवस्थाएँ एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, केवल ऊपरी शब्दजाल

से आम जन को भ्रमित कर रखा है। यह वास्तविक जनहितैषी वैदिक व्यवहार से दूर रखने का षड्यन्त्र है। ये दोनों व्यवस्थाएँ समान कैसे हैं, इसके लिए निम्न बातों पर विचार करें—

1. दोनों व्यवस्थाओं में संसाधनों का केन्द्रीकरण किया जाता है। एक व्यवस्था में संसाधनों के मालिक पूँजीपति कहलाते हैं, तो दूसरी व्यवस्था में स्टेट के नाम पर पार्टी के कुछ लोग होते हैं। दोनों व्यवस्थाओं में आम जन के अधिकार में संसाधन नहीं होते।
2. दोनों व्यवस्थाओं में मनुष्य के चहूँ विकास (वैचारिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक) की सम्भावना नहीं के बराबर है।
3. दोनों व्यवस्थाओं में अधिकार के नाम पर जो सुविधाएँ दी जाती हैं, वे इस तरह की और इस दृष्टि से दी जाती हैं कि व्यक्ति उनका कार्य करने में सक्षम रहे, जैसे बैल या घोड़े को अच्छा दाना-पानी इसलिए दिया जाता है कि इन पशुओं से ज्यादा काम लिया जा सके। यह अच्छा दाना-पानी पशुप्रेम के कारण नहीं दिया जाता।
4. दोनों व्यवस्थाएँ नास्तिक हैं। साम्यवाद में सीधे ईश्वर के अस्तित्व को नकारा जाता है और पूँजीवाद में ईश्वर की कृति मानव को नकारा जाता है।
5. दोनों व्यवस्थाओं में विरोधी विचार को बलपूर्वक कुचला जाता है। वैचारिक स्वतन्त्रता या यूँ कहें कि लोक भावना का कोई स्थान नहीं होता।
6. दोनों व्यवस्थाएँ नास्तिक होने के कारण संसाधनों को हथियाने के लिए किसी भी सीमा तक जा सकती हैं अर्थात् दूसरों के संसाधन

हथियाने से कोई परहेज नहीं है।

7. अमेरिका पूँजीवादी व्यवस्था है, जो 585 अरबपतियों के साथ पहले स्थान पर है और चीन 373 अरबपतियों के साथ साम्यवादी व्यवस्था है। भारत भी अमेरिका की तरह पूँजीवादी व्यवस्था की ओर तेजी से बढ़ रहा है। भारत 121 अरबपतियों के साथ तीसरे स्थान पर है।

8. दोनों व्यवस्थाएँ मानवता की हितैषी होने का ढोंग करती हैं, प्रचार सामग्री भले ही भिन्न है।

9. दोनों व्यवस्थाएँ नई विश्व व्यवस्था (न्यू वर्ल्ड ऑर्डर) के एजेंडे को आगे बढ़ाती हैं। नई विश्व व्यवस्था का उद्देश्य है— दुनिया के संसाधनों पर चन्द घरानों करीब 300-400 व्यक्तियों का अधिकार स्थापित करना। इस उद्देश्य के लिए धरती की आबादी को 800 करोड़ से 100 करोड़ से नीचे लाना, सभी को नास्तिक बनाना, राष्ट्रीयता समाप्त करना, सम्पत्ति के अधिकार को समाप्त करना, लोकतन्त्र को समाप्त करना आदि कार्य मुख्य हैं।

10. दोनों व्यवस्थाएँ वैदिक व्यवस्था, जिसमें मानव का वैचारिक, सामाजिक, धार्मिक व आध्यात्मिक विकास सम्भव है, जहाँ संसाधनों पर सभी का अधिकार माना है और केन्द्रीकरण की छूट नहीं है, का विरोध करती हैं।

* * * * *

16. देशभक्ति—

देश का मतलब है— देश के नागरिक और भक्ति का मतलब है—

देश के नागरिकों को बौद्धिक, शारीरिक और आर्थिक रूप से मजबूत करना। देश के नागरिकों को बौद्धिक, शारीरिक व आर्थिक रूप से कमजोर करना देशभक्ति का उल्टा हुआ, जिसे देशद्रोह कहेंगे। कोई व्यक्ति, संस्था, संगठन या सरकार यदि उपरोक्त में से कोई एक भी कार्य कर रही है, तो वह देशभक्ति का कार्य होगा और इसके विपरीत कार्य देशद्रोह या देश के साथ गद्दारी होगी। ढोंग-पाखण्ड, अन्धविश्वास, दुष्प्रचार और भेदभाव, ये सब बौद्धिक क्षमता को कमजोर करते हैं। देश के नागरिकों में किसी बनावटी महामारी का डर फैलाकर अनाप-शनाप दवाओं का धन्धा करना, नशे को बढ़ावा देना, फैशन, अश्लीलता को बढ़ाना आदि, ये सब देश के लोगों को शारीरिक व आर्थिक रूप से कमजोर करने के हथकण्डे हैं।

निजीकरण करना, डिजिटलाइजेशन करना, बड़े-बड़े मॉल खोलना, कृषि-पशुपालन को हतोत्साहित करना, चीजों का कृत्रिम अभाव पैदा करना, भ्रष्टाचार-रिश्वतखोरी को बढ़ाना, रोजगार न देकर वोट के लिए कुछ छूट का या सहायता का लालच देना, ये सब कार्य देश के नागरिकों को आर्थिक रूप से कमजोर करने के लिए हैं। आम लोगों को हर प्रकार से कमजोर करना और भाषण-प्रचार करना, देशभक्ति का दिखावा करना एक तरह का सीधा पाखण्ड तो है ही, देशद्रोह भी है।

देशभक्ति का भाषण, पोस्टर, नारे, प्रचार-प्रसार आदि से कोई लेना-देना नहीं है। देशभक्ति जनकल्याण के ठोस कार्यों पर टिकी होती है, भाषणों, नारों या पोस्टरों के सहारे नहीं होती। देश के लोगों को मत-पन्थ, जाति-पाति, ऊँच-नीच में बाँटना, भेदभाव को बढ़ावा देना स्वयं को कमजोर करना है, क्योंकि देश के नागरिक जितने ज्यादा बँटे हुए

होंगे, देश उतना ही कमजोर हो जायेगा। देश के लोगों को किसी भी बहाने से बाँटना सीधा देशद्रोह तो है ही, देश को गुलाम करना भी है। इतिहास गवाह है कि यह बिखराव और ढोंग-पाखण्ड व अन्धविश्वास ही देश की गुलामी का कारण था। देश का दूसरा भाग देश के संसाधन (जल, जंगल, जमीन, खनिज) हैं। देश के संसाधनों की सुरक्षा देशभक्ति और इनका अति दोहन, फिजूलखर्ची, प्रदूषण और व्रिकय देशद्रोह है।

* * * * *

17. विकास—

विकास के दो भाग हैं—

1. मानसिक विकास
2. भौतिक विकास

मानसिक विकास को भी आगे बौद्धिक और भावनात्मक विकास में बाँटा जा सकता है। सभी प्रकार के विकास एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं, इसलिए इनका परस्पर सन्तुलन आवश्यक है और यह सन्तुलन भी अपने आप में विकास ही है। वर्तमान में भौतिक विकास ही विकास को माना जाता है। भौतिक विकास का पैमाना है कि कितनी ऊर्जा की खपत की जाती है। अधिक से अधिक ऊर्जा खर्च करना अधिक से अधिक विकास है। भौतिक विकास में ज्यादा से ज्यादा ऊर्जा खर्च होती है, तो स्वाभाविक है कि हवा, पानी, जमीन, जंगल, खनिज आदि संसाधनों का ज्यादा से ज्यादा दोहन होगा।

वर्तमान विकास में अधिक से अधिक तकनीकों का प्रयोग होने से संसाधनों का दोहन अधिक होगा। अधिक से अधिक ऊर्जा और विकास

तकनीकों का प्रयोग दोनों मिलकर पर्यावरण, हवा, पानी, जमीन, आकाश आदि का भारी प्रदूषण करते हैं। यह विकास केवल भौतिक होने के कारण भावनात्मक विकास में बड़ी बाधा बनता है, जिसका सीधा परिणाम है— पर्यावरण के प्रदूषण के साथ मनुष्य का भयंकर शोषण। इस मानव शोषण को आप बड़ी आसानी से बढ़ते रोगों व बढ़ती गैरबराबरी के रूप में देख सकते हैं।

विकास का उद्देश्य होना चाहिए कि मनुष्य अधिक और अधिक सुखी हो, परन्तु क्या मानव सुखी होता जा रहा है? इस विकास को दो बड़े प्रभावों की दृष्टि से देखें, तो विकास की वास्तविकता स्पष्ट हो जाती है। ऊर्जा का सबसे बड़ा स्रोत जहाँ से आधुनिक विकास ऊर्जा ले रहा है, वह खनिज ईंधन, कोयला, तेल, गैस, यूरेनियम हैं। जिस गति से इनकी खपत हो रही है, उस हिसाब से कोयला 100-125 वर्ष, तेल-गैस 50-55 वर्ष और यूरेनियम 60-65 वर्ष तक चल पायेंगे, तो खनिज ईंधन 50-58 वर्ष तक चल पायेंगे। इसके बाद आप कहें कि सौर ऊर्जा से विकास को बनाये रखेंगे, सभी कार्यों के लिए सौर ऊर्जा का प्रयोग करेंगे, तो बहुत शीघ्र ही धरती पर सोलर पैनल्स व बैटरीज के कचरे के पहाड़ बन जायेंगे और धरती पर रहने की जगह कम पड़ जायेगी।

वैज्ञानिकों के अनुमानों के हिसाब से 80-85 वर्ष तो बहुत दूर हैं, जिस दर से खनिज ईंधनों का प्रयोग हो रहा है, इससे होने वाली ग्लोबल वार्मिंग से होने वाले दुष्परिणाम धरती से मानव का अस्तित्व 8-10 वर्ष में ही मिटा देंगे। यदि यह भी मान लें कि ऊर्जा की खपत को नियन्त्रित किया जा सकता है, तो भी वर्तमान भौतिक विकास का एक पक्ष और देखिये—

वर्तमान में धरती पर 800 करोड़ आबादी है और विश्व स्तर पर जो अन्न उत्पादन हो रहा है, इससे 2.5-3 गुणा आबादी का पेट भर सकता है, परन्तु वास्तविकता यह है कि विश्व स्तर पर 100-120 करोड़ लोग भूखे सोते हैं। कुल अन्न उत्पादन का 40% मांस के लिए पशुओं को खिला दिया जाता है। यदि 10% मांसाहार कम कर दिया जाये, तो कोई भूखा न सोये। मांसाहार से क्रूरता इस सीमा तक बढ़ती है कि स्वयं मांस खाकर यह दिखाई नहीं देता कि पड़ोसी भूखा सो रहा है। आधुनिक विकास न तो लम्बा चलने वाला है और न ही मानवीय है। शाश्वत और मानवीय विकास तो वेदानुकूल जीवन-शैली से ही सम्भव है। यही वेद की वैज्ञानिकता है। वैसे भी धरती पर जीने के संसाधन सीमित हैं, इनका अमर्यादित उपयोग सम्भव नहीं है। दूसरे आधुनिक विकास अनवीकरणीय (इररेवेर्सिबल) प्रक्रियाओं का सहारा ले रहा है, तो यह शाश्वत नहीं है।

* * * * *

18. समृद्धि का सूत्र—

समृद्ध व सुखी जीवन का सम्बन्ध जीवनयापन के साधनों के साथ सीधा जुड़ा हुआ है। मनुष्य-समाज की बहुत सी समस्याएँ भी जीवन के साधनों की उपलब्धता से जुड़ी हैं। संसाधनों का बँटवारा भी महत्त्वपूर्ण कारक है, जो यह तय करेगा कि व्यक्ति और समाज विशेष के हिस्से में कितने साधन आयेंगे। यह भी स्पष्ट है कि उपलब्ध संसाधनों का बँटवारा यदि अधिक मनुष्यों में होगा, तो साधन कम मिलेंगे और कम साधनों के साथ जीवन स्तर नीचे आयेगा। इसी सरल गणित के आधार पर देश-दुनिया के अर्थशास्त्री, राजनेता, बुद्धिजीवी और सामान्य जन भी एक

जुमला एक स्वर से बोलते हैं कि बढ़ती जनसंख्या जीवन स्तर को गिराने व जीवन जीने के साधनों की कमी का मुख्य कारण है। रोजगार, साधनों की उपलब्धता व जीवन स्तर को उठाने का एकमात्र व महत्त्वपूर्ण समाधान जनसंख्या कम करना है। जनसंख्या कम नहीं हुई, तो कोई भी प्रयास सफल नहीं हो सकता। इस मूलभूत समस्या के बारे में कुछ मौलिक तथ्यों पर विचार कर लेना अति आवश्यक है।

ऑक्सफेम (OXFAM) की वर्ष 2017 की रिपोर्ट के अनुसार हमारे देश की 73% सम्पत्ति कुल जनसंख्या के 1% व्यक्तियों के पास है। दुनिया की कुल सम्पत्ति में से आधी सम्पत्ति के मालिक केवल 53 व्यक्ति हैं। यह असमानता 2024 तक बढ़ी है, कम नहीं हुई है। वर्तमान में भारत इस असमानता की दृष्टि से विश्व में प्रथम स्थान पर है। धरती पर 800 करोड़ जनसंख्या में 53-60 की संख्या क्या है? विश्व की आधी सम्पत्ति होने का अर्थ है, उनकी सम्पत्ति हजारों खरबों (एक खरब = 100 अरब, एक अरब = 100 करोड़) में होगी। यदि अरबपतियों की संख्या ली जाये, तो यह संख्या 2-2.5 करोड़ तक होगी। यदि अरबपतियों के पास दुनिया की आधी में से आधी सम्पत्ति मानें, तो 2.5 करोड़ के पास दुनिया की 25% सम्पत्ति हुई। यदि 20 करोड़ से 1 अरब तक के मालिकों की भी धनी लोगों में गणना की जाये, तो यह संख्या 10 से 11 करोड़ तक आयेगी और शेष बची सम्पत्ति 10-11% रहेगी। अब मोटे तौर पर दुनिया की 90% सम्पत्ति के मालिक हैं— 10 करोड़ व्यक्ति और 10% सम्पत्ति आती है— 790 करोड़ के पास।

अब आपको यह भी मानना पड़ेगा कि जीवन में सभी के साथ कुछ समस्याएँ, जैसे सन्तान की समस्या, बीमारी, मुकदमेबाजी, विश्वासघात,

चोरी-डकैती, सुरक्षा, सामाजिक सम्बन्ध, रिश्ते-नाते आदि होती ही हैं। साधनों की पर्याप्तता के होते हुए भी अन्य कारणों से जीवन दुःखी हो सकता है। यदि साधनसम्पन्न लोगों में 90% को सुखी मानें, तो 90% सम्पत्ति सुखी रख पाती है— 9-10 करोड़ लोगों को और 10% सम्पत्ति वालों में 10% को सुखी मानें, तो सुखी लोगों की संख्या बनती है— 78-79 करोड़ अर्थात् लगभग आठ गुणा। यह सरल सी गणना यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि सुखी जीवन के लिए केवल संसाधनों का बहुत अधिक मात्रा में होना अनिवार्य नहीं है। हाँ, जीवन की मूलभूत आवश्यकताएँ ठीक से पूरी हों, यह तो आवश्यक है, परन्तु इसके लिए अधिक साधनों का होना सुखी जीवन की गारंटी बिल्कुल नहीं है।

अब जनसंख्या और सुखी जीवन या अच्छे जीवन स्तर का सम्बन्ध देखते हैं। यदि हम संसाधनों के बँटवारे को ज्यों का त्यों रहने दें और देखें कि जनसंख्या नियन्त्रण से खुशहाली बढ़ेगी या कम होगी? यदि हम जनसंख्या को आधा कर दें अर्थात् विश्व स्तर पर 400 करोड़ लोगों को हटा दें या मार दें या पैदा ही न होने दें, तो सुखी लोगों की संख्या दोगुनी हो जायेगी अर्थात् 160 करोड़ लोग सुखी हो जायेंगे। यदि खरबपति, अरबपति और 20 करोड़ से ज्यादा संसाधन वाले 10-11 करोड़ लोगों को हटा दें या मार दें, तो 710 करोड़ लोग (790 करोड़ का 90%) सुखी हो जायेंगे। अब हमारे पास दो विकल्प हैं— 400 करोड़ लोगों को हटाकर 160 करोड़ को सुखी करें या 10-11 करोड़ लोगों को हटाकर 710 करोड़ को सुखी करें। इस गणना का उत्तर हम जनसंख्या कम होने से जीवन स्तर सुधार मानने वाले अर्थशास्त्री, अधिकारी, नेता या बुद्धिजीवी से ही पूछेंगे कि कौनसा विकल्प ठीक रहेगा?

यही गणना भारत के सन्दर्भ में लागू होती है, जहाँ 75% सम्पत्ति 1% अरबपतियों (1-1.5 करोड़) के पास है और 25% में 138 करोड़ की जनसंख्या गुजारा कर रही है। वैसे भी वर्तमान में विश्व स्तर पर जो खाद्यान्न पैदा होता है, उससे वर्तमान जनसंख्या से 3-4 गुणा जनसंख्या का पेट भर सकता है। इसलिए मूल समस्या संसाधनों की बहुत ज्यादा असमानता है, न कि जनसंख्या।

एक बात और हम सबके देखने में आती है कि किसी भी मत-पन्थ या किसी भी जाति या वर्ग के व्यक्तियों में जहाँ लोगों को जीवनयापन के ठीक साधन उपलब्ध हैं, वहाँ कम बच्चे पैदा किये जाते हैं और उन्हीं के समाज के दूसरे लोगों में जहाँ कम साधन उपलब्ध हैं, वहाँ ज्यादा बच्चे पैदा किये जाते हैं। इसका सीधा परिणाम हुआ कि जीवन स्तर सुधरने पर अर्थात् जीवनयापन के पर्याप्त साधन मिलने पर जनसंख्या स्वतः नियन्त्रण में आने लगती है। जनसंख्या नियन्त्रण का समाधान बड़ी जनसंख्या का जीवन स्तर सुधारना है, न कि जनसंख्या घटाकर जीवन स्तर सुधारना। धरती पर जीवनयापन के पर्याप्त संसाधन हैं, समस्या असमान वितरण की है। सुखी जीवन का फॉर्मूला तो वेद के पास है, जहाँ जीवनयापन के संसाधनों को ईश्वरप्रदत्त माना है, इन पर सभी का बराबर अधिकार माना है और संसाधनों का त्यागपूर्वक भोग करने का निर्देश दिया गया है। संसाधनों के केन्द्रीकरण की किसी प्रकार की छूट नहीं है। वर्तमान की भौतिकवादी व केन्द्रीकरण द्वारा असमानता बढ़ाने वाली संस्कृति के पास सुखी जीवन की सम्भावना नगण्य है।

* * * * *

19. गुलाम कौन ?

क्या गुलाम के सींग होते हैं ? हाथ, पैर, कान, नाक, आँख की संख्या या पोजीशन अलग होती है ? गुलाम देश में सूरज कम या अधिक चमकता है ? हवा धीमी या तेज चलती है ? चाँद दिखाई देता है या नहीं ? जमीन अन्न-फल देती है या नहीं ? ऐसा कुछ भी नहीं है, ये सब गुलाम व मालिक के लिए एक जैसे होते हैं। तो फिर गुलाम व मालिक में अन्तर क्या है ? मूल बात यह है कि जिस व्यक्ति, समाज, संस्था, संगठन व देश की प्रत्येक गतिविधि किसी दूसरे से निर्देशित व नियन्त्रित होती है, वह गुलाम है और जो दूसरे के दबाव व नियन्त्रण से बाहर है, वह स्वतन्त्र है। वैचारिक स्तर पर यह नियन्त्रण, निर्देश या नकल बौद्धिक दासता कहलाती है और भौतिक स्तर पर इसका मूल आर्थिक कमजोरी व आर्थिक नियन्त्रण दूसरे के हाथ में जाना है, जिसका परिणाम है— जीवन की सभी भौतिक आवश्यकताओं का नियन्त्रण दूसरे के हाथ में चले जाना। वैसे तो दोनों प्रकार की गुलामी एक-दूसरे से जुड़ी हुई है, परन्तु वर्तमान समय में आर्थिक गुलामी ज्यादा प्रभावी है। व्यक्ति से लेकर राष्ट्र तक गुलाम बनाने के बहुत सारे तौर-तरीके हैं, लेकिन सबसे कारगर तरीका है— किसी व्यक्ति या देश को ऋणी बना देना। इसमें कोई सन्देह नहीं कि व्यक्ति या देश के ऋणी होने में व्यक्ति या देश की गलत नीतियों व गलत आचरण का हाथ है, लेकिन परिणाम एक ही है कि ऋणी व्यक्ति या देश निश्चित रूप से गुलाम हो जाएगा।

आर्थिक गुलामी से बाहर आने का विकल्प है— ऋण चुका देना और आगे ऋण लेने से बचना। यदि ऋण नहीं चुकाते, तो दो स्थितियाँ हैं— यदि आप ऋणदाता से बलवान हैं, तो ऋण न चुकाने पर भी ऋणदाता के निर्देश व नियन्त्रण को मना कर सकते हैं और यदि ऋणदाता

से कमजोर हैं, तो आपको ऋणदाता के निर्देश व नियन्त्रण मानने ही पड़ेंगे। यदि आपको ऋणदाता के निर्देश व नियन्त्रण मानने पड़ते हैं, तो आपकी नीति, योजना व कानून ऋणदाता के प्रभाव से अछूते या आजाद कैसे रह सकते हैं? यदि आपकी योजना, नीति व कानून दूसरे के नियन्त्रण में हैं, तो आपकी प्रत्येक गतिविधि उसके नियन्त्रण से मुक्त नहीं रह सकती और प्रत्येक गतिविधि का नियन्त्रण (कन्ट्रोल) दूसरे के हाथ में होना ही तो गुलामी है। फिर आप गुलामी से कैसे बच सकते हो? ऋण आपको या आपके देश को गुलाम बनाएगा, इस सैद्धान्तिक तर्क की अनदेखी करना किसी की भी औकात से बाहर है। गुलाम होना तय है।

वर्तमान में इस सिद्धान्त को अपने देश पर लागू करके देखें। वर्ष 2014 तक देश पर 53 लाख करोड़ का ऋण हो चुका था। दिसम्बर 2023 तक यह ऋण 205 लाख करोड़ हो गया अर्थात् लगभग चार गुना। देश के कुल टैक्स वसूली का 47% अर्थात् लगभग आधा टैक्स ब्याज में चला जाता है। ऋण बढ़ोतरी पिछले 5 वर्ष में अधिक रही है। यदि इसी दर से ऋण बढ़ता है, तो अगले 5 वर्ष में ऋण की राशि निश्चित तौर पर इतनी हो जाएगी कि सारा टैक्स ब्याज में चला जाएगा। अगले 5 वर्ष में अर्थात् वर्तमान से 10 वर्ष के बाद इतना ऋण होगा कि सारे देश की सम्पत्ति बिकने पर भी ऋण चुकता नहीं होगा। ऐसी स्थिति में आप गुलाम होंगे या आजाद, आप स्वयं विचार करें।

अन्त में निष्कर्ष के रूप में कह सकते हैं कि साधन सुविधा तो दे सकते हैं, लेकिन सुख नहीं दे सकते। सुख तो समाधान से आयेगा और समाधान आता है— तर्कपूर्ण विश्लेषण से और तर्कपूर्ण विश्लेषण का

परिणाम मिलता है— वैदिक संस्कृति में। इसलिए सुखी जीवन की गारंटी हुई— वेदानुकूल जीवन और यही वैदिक संस्कृति की वैज्ञानिकता है।

* * * * *

20. वैज्ञानिक कौन?

वैज्ञानिक मानव जीवन को सुखी व सरल बनाने के लिए विभिन्न खोजों व तकनीकों का अनुसन्धान करता है और राजनेता राज्य व्यवस्था के माध्यम से जनजीवन को सुरक्षित व व्यवस्थित करने का कार्य करता है और वैज्ञानिकों द्वारा खोजी गई तकनीकों का लाभ आम जन को मिल सके, ऐसी व्यवस्था करता है। तो खोज क्या है और उसका प्रयोग कितना, कहाँ और किसलिए करना है, यह कार्य वैज्ञानिक और राजनेता का हुआ। दोनों के कार्यों का परिणाम मानव जीवन और उसके आस-पड़ोस अर्थात् दूसरे जीव-जन्तु कितने खुशहाल हुए, इस पैमाने से मापा जायेगा। मानव जीवन के सुखी-समृद्ध होने के कुछ मूलभूत पैमाने हैं— स्वास्थ्य, सुरक्षा, भोजन, भविष्य आदि।

हम देख रहे हैं कि ज्यों-ज्यों विज्ञान उन्नति कर रहा है, बीमारियाँ घटने के स्थान पर बढ़ रही हैं, मनुष्य जीवन और ज्यादा असुरक्षित होता जा रहा है, भूखे व कुपोषित लोगों की संख्या बढ़ती जा रही है और स्वयं वैज्ञानिक कह रहे हैं कि धरती पर मानव जीवन के सामने संकट बढ़ते जा रहे हैं। इन सबका कारण एक ही हो सकता है— वैज्ञानिक खोजें और उन पर आधारित तकनीक अधूरी या असुरक्षित हैं। इन खोजों और तकनीकों का प्रयोग कितना, कहाँ और किसलिए किया जाये, यह राजनेताओं पर निर्भर करता है। बढ़ती समस्याएँ कह रही हैं कि वैज्ञानिक

उन्नति का दुरुपयोग हो रहा है।

यह भी सामने है कि विश्व स्तर पर युद्ध, लड़ाई-झगड़े, शोषण, आर्थिक असमानता, संसाधनों का अति दोहन, प्रदूषण आदि सब बढ़ रहे हैं। एक तो खोज व तकनीक अधूरी और ऊपर से उसका दुरुपयोग, यह हुआ वर्तमान के वैज्ञानिकों व राजनेताओं का कार्य। हरित क्रान्ति, टीकाकरण, डिजिटलाइजेशन, परमाणु हथियार और अब जैविक हथियार, इन सबके परिणाम तेजी से सामने आ रहे हैं। लगता है कि वर्तमान वैज्ञानिक और राजनेता धरती पर अपने जीवन के 50-60 वर्ष ही धरती का जीवन मानकर चल रहे हैं, उनके बेटे-पोतों के लिए धरती जीवन चलाने योग्य रहेगी या नहीं, इसकी चिन्ता करने की आवश्यकता वे नहीं समझते। अधिक नहीं तो कम से कम जिस व्यक्ति को 150-200 वर्ष आगे का दिखाई नहीं देता, वह वैज्ञानिक या राजनेता कहलाने का अधिकारी नहीं हो सकता।

महर्षि दयानन्द सरस्वती आज से 150 वर्ष पहले कह रहे थे कि प्रत्येक गृहस्थ को प्रतिदिन अग्निहोत्र करना चाहिए, नहीं तो वायु प्रदूषित हो जायेगी और अनेक प्रकार के रोग फैल जायेंगे। ऋषि की बात की अनदेखी हुई और आज हम वायु प्रदूषण के कारण अनेक रोगों की चपेट में हैं। तो क्या ऋषि दयानन्द को वैज्ञानिक न मानें? समाधान वेद के अनुसार चलने में है, क्योंकि वेद की बातें वैज्ञानिक होने के साथ शाश्वत और सुरक्षित भी हैं। ऐसा लगता है कि वर्तमान राजनेता तस्कर हैं और वैज्ञानिक उनकी कठपुतली हैं, क्योंकि जनहित किसी को दिखाई नहीं दे रहा है।

* * * * *

21. क्या विज्ञान बीमारियों को नियन्त्रित कर पायेगा?

वर्तमान में मानव अनेक प्रकार की बीमारियों से घिरा हुआ है। कुछ वर्ष पहले सारा विश्व कोविड-19 से परेशान रहा। दिन में कई बार सावधान किया जाता था कि जब तक दवाई नहीं, तब तक ढिलाई नहीं, ऐसा करो, वैसा करो आदि। क्या दवा ने कोविड को खत्म किया या अन्य अनेक बमारियों को जन्म दिया? क्या लोगों को कमजोर और फार्मा कम्पनियों का स्थिर ग्राहक नहीं बना दिया? भविष्य में जब कोई बीमारी आयेगी, तो क्या विज्ञान उसका उपचार कर लेगा? इस चर्चा को आगे बढ़ाने से पहले मैं एक घोषणा करना चाहता हूँ और इस घोषणा के अनुसार ही कोई समाधान हाथ लग सकता है, इसके विरुद्ध कुछ हाथ आने वाला नहीं है। घोषणा यह है कि सिद्धान्त सर्वोपरि है, सिद्धान्त के सामने किसी की कोई औकात नहीं होती। सिद्धान्त के विरुद्ध चलने से हानि होगी और कष्ट भी होगा। सुख केवल सिद्धान्तानुसार चलने में ही है। घोषणा में 'किसी' शब्द का अभिप्राय राजनेता, वैज्ञानिक, धनपति आदि सभी से है। वे कितने ही बड़े हों, कितनी ही संख्या में क्यों न हों, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता, सिद्धान्त के सामने इन सबकी सम्मिलित सत्ता का भी कोई अर्थ नहीं है। अब विज्ञान बीमारी पर काबू पा लेगा, इसका निर्णय कुछ सिद्धान्तों के आधार पर ही हो सकता है। ये सिद्धान्त निम्न प्रकार हैं—

1. बीमारी और गन्दगी का सीधा सम्बन्ध है।
2. जितने प्रकार की गन्दगी, उतने प्रकार की बीमारियाँ।
3. किसी वस्तु के बारे में जानकारी उसे उपयोग करने वाले की अपेक्षा उस वस्तु के बनाने वाले को अधिक होती है।

4. भवन की नींव कमजोर करने से भवन सुरक्षित नहीं रह सकता।
5. सुखी जीवन का आधार स्वस्थ शरीर और सन्तोष हैं।

अब देखते हैं कि आधुनिक विज्ञान और उसका प्रयोग करने वाले उपरोक्त नियमों का कितना पालन कर रहे हैं—

प्रत्येक जीवधारी का जीवन हवा, पानी और भोजन पर टिका हुआ है। यह बात भी सर्वमान्य है कि यदि हवा, पानी व भोजन भी शुद्ध नहीं होंगे, तो जीवन को नहीं टिका पायेंगे। इसलिए शुद्ध हवा, पानी व भोजन ही जीवन के आधार हैं। यदि इनमें से एक भी प्रदूषित हुआ, तो जीवन टिक नहीं पायेगा और यदि ये सारे ही प्रदूषित हो गये, तो किसी की कोई औकात नहीं कि वह जीवन को बचा पाये। अब विस्तार में न जाते हुए वर्तमान में हवा की क्या स्थिति है, इसका थोड़ा आकलन करें। शुद्ध हवा जीवन का पहला आधार है। हवा सभी जीवों को श्वास लेने के लिए परमात्मा की दी हुई है, यदि आप परमात्मा को नहीं मानते, तो प्रकृति की दी हुई है, किसी की बपौती नहीं है। इसका अर्थ हुआ कि हवा पर सभी जीवों का बराबर अधिकार है।

वर्तमान में विश्व स्तर पर प्रति व्यक्ति प्रतिदिन 10 यूनिट बिजली खपत है। एक यूनिट बिजली उत्पादन में लगभग 8 व्यक्तियों द्वारा दिनभर श्वास लेने में प्रयोग होने वाली हवा के बराबर वायु प्रदूषित होती है। प्रत्येक व्यक्ति 10 यूनिट बिजली प्रयोग करके 80 व्यक्तियों की हवा खर्च कर रहा है। विश्व स्तर पर प्रति व्यक्ति प्रतिदिन लगभग 1.5 किलोग्राम सीमेंट का उत्पादन हो रहा है। एक कि.ग्रा. सीमेंट उत्पादन में 11 व्यक्तियों की हवा का कोटा खत्म होता है। विश्व स्तर पर प्रति व्यक्ति प्रतिदिन लगभग 2 लीटर डीजल-पेट्रोल खर्च हो रहा है। एक

लीटर तेल जलने से 10 व्यक्तियों की हवा का कोटा खप जाता है। केवल इन तीन गतिविधियों से प्रतिदिन 116 अर्थात् लगभग 100 से अधिक व्यक्तियों की हवा का कोटा एक व्यक्ति खर्च कर रहा है।

यदि सभी प्रकार के उद्योग-धन्धों को मिला लें, तो आधुनिक मानव विज्ञान के प्रयोग द्वारा लगभग 200 व्यक्तियों के बराबर हवा को प्रदूषित कर रहा है। सभी प्रकार की तथाकथित विकास की गतिविधियों द्वारा न केवल हवा को ही, अपितु पानी और जमीन को भी प्रदूषित किया जा रहा है। इस बात से कौन इंकार कर सकता है कि सभी प्रकार के भोजन हवा, पानी और जमीन से ही पैदा होते हैं, तो हवा, पानी व जमीन के प्रदूषित होने पर शुद्ध भोजन कैसे मिल सकता है ? इन आधारभूत वस्तुओं के गन्दा या प्रदूषित होने पर पहले सिद्धान्त के अनुसार बीमारियाँ होंगी और इनके बढ़ते प्रदूषण से और ज्यादा बीमारियाँ होंगी। यह भी सभी की जानकारी में है कि न केवल प्रदूषण की मात्रा बढ़ रही है, बल्कि प्रदूषण के प्रकार भी बढ़ रहे हैं।

दूसरे सिद्धान्त के अनुसार जितने प्रकार के प्रदूषण होंगे, उतने प्रकार की बीमारियाँ होती चली जायेंगी, तो क्या विज्ञान भी साथ-साथ दवाई व उपचार नहीं निकाल लेगा? इस स्थिति में विज्ञान कभी सफल नहीं होगा, क्योंकि विज्ञान एक बीमारी का उपचार निकालेगा, उतने समय में तीन नई बीमारियाँ पैदा हो जायेंगी। इसका एक कारण तो लगातार बढ़ता प्रदूषण है और दूसरा कारण यह है कि कोई भी दवा ऐसी नहीं बन सकती, जिसका कोई साइड इफेक्ट न हो। बढ़ते प्रदूषण नये-नये रोग पैदा करते चले जायेंगे और विज्ञान इनको कभी नहीं रोक पायेगा। यहाँ विज्ञान एक और मूलभूत नियम की अनदेखी कर रहा है। यह नियम

कार्य-कराण का है। वर्तमान में कारणों को हटाये बिना परिणाम आने से रोकने का असफल और नियमविरुद्ध प्रयास किया जा रहा है। बीमारियों को रोकने का भ्रम पाला जा रहा है।

अब टीके के बारे में विचार करते हैं। विश्व स्तर पर दवा कम्पनियाँ शीघ्र से शीघ्र किसी बीमारी का टीका बाजार में उतारने का जोर-शोर से प्रयास करती हैं। विश्वभर के चिकित्सा क्षेत्र से जुड़े वैज्ञानिक, जो सरकारों और दवा कम्पनियों के दबाव व प्रभाव में नहीं हैं, जल्दबाजी में बनाये जाने वाले टीकों को प्रभावी व सुरक्षित नहीं मानते और वे स्पष्ट रूप से लोगों को इस प्रकार के टीके के प्रयोग से बचने का परामर्श देते हैं। हम जल्दबाजी वाली बात को छोड़कर तीसरे सिद्धान्त के अनुसार इन सभी प्रकार के टीकों पर विचार करते हैं। सभी प्रकार के टीकों में जिस बीमारी का टीका तैयार किया जाता है, उसमें उसी बीमारी को पैदा करने वाले वायरस का प्रयोग किया जाता है। वायरस एक प्रकार का डी.एन.ए. होता है, जो जिस भी शरीर में संक्रमण करता है, उस शरीर की कोशिकाओं के डी.एन.ए. के साथ छेड़छाड़ करता है। शरीर की कोशिकाएँ इस छेड़छाड़ को निष्फल करने की कोशिश करती हैं। इस प्रतिरोध को शरीर की प्रतिरोधक शक्ति कहते हैं। शरीर की कोशिकायें कैसे कार्य करती हैं, इस बात को इन कोशिकाएँ को बनाने वाला ईश्वर या प्रकृति किसी वैज्ञानिक से अधिक जानते हैं।

वैज्ञानिक वायरस के माध्यम से इन कोशिकाओं का उपयोग करके टीका बनाकर बीमारी को नियन्त्रित (कन्ट्रोल) करना चाहता है। इस प्रक्रिया में कोशिका के डी.एन.ए. के साथ छेड़छाड़ की जाती है। यह वैज्ञानिक छेड़छाड़ इच्छित परिणाम लायेगी, इसकी कोई गारंटी नहीं है,

क्योंकि परमात्मा या प्रकृति की बनाई वस्तु की पूरी समझ वैज्ञानिक को कभी भी नहीं हो सकती। इसका कारण यह है कि परमात्मा या प्रकृति के ज्ञान के सामने मनुष्य का ज्ञान बहुत छोटा है और सिद्धान्त यह है कि बड़ी वस्तु छोटी में नहीं आ सकती। मनुष्य ने पौधों के डी.एन.ए. में छेड़छाड़ करके देखा है। उदाहरण के लिए सोयाबीन, कपास, मक्का, बाजरा आदि के बीजों के साथ छेड़छाड़ की है। इन सभी के परिणाम नकारात्मक आये हैं। रूसी वैज्ञानिक एलेक्सकी वी. सुरोव के अध्ययन जी.एम. सोया लिंक्ड टू स्टरिलिटी, जो जेफ्री स्मिथ द्वारा हेल्थ रिपोर्ट्स[३] जर्नल में दिया है, के अनुसार जी.एम. उत्पादों से कई प्रकार की विकृतियाँ जैसे— गर्भपात, कद-काठी में कमी, बीमार होना आदि पायी गयी हैं। जी.एम. सब्जी, फल, अनाज के शरीर पर दुष्प्रभाव तो हैं ही, इनका स्वाद भी जाता रहा है। जब पेड़-पौधों के डी.एन.ए. से छेड़छाड़ के नकारात्मक प्रभाव देखने को मिल रहे हैं, तो मनुष्य के डी.एन.ए. के साथ टीकों के माध्यम से की जा रही जल्दबाजी वाली छेड़छाड़ कैसे सुरक्षित हो सकती है ? वैज्ञानिकों की मानव डी.एन.ए. की छेड़छाड़ कभी अच्छे परिणाम नहीं ला सकेगी, क्योंकि मानव की समझ सीमित है। इस दृष्टि से किसी भी बीमारी का टीका सुरक्षित नहीं हो सकता।

हवा, पानी व जमीन जीवन के आधार हैं। इनको प्रदूषित करके विज्ञान के बलबूते पर स्वस्थ जीवन बनाये रखना ऐसी ही बात हुई कि भवन की नींव को कमजोर करके भवन के ऊपरी भाग की लीपा-पोती करना, पेंट करना, सजावट करना और यह मान बैठना कि भवन सुरक्षित हो गया। विज्ञान के सहारे दवाइयाँ व टीके बनाकर स्वास्थ्य के भवन को

[३] https://rense.com

टिकाये रखने की इच्छा करना ऐसा ही है, जैसे नींव की देखभाल छोड़कर भवन को रंग-रोगन करके सुरक्षित मानना। मानव जीवन को सुखी बनाना विज्ञान का उद्देश्य माना जाता है, लेकिन आधुनिक विज्ञान इस उद्देश्य में भी कभी सफल नहीं हो सकेगा। कारण यह कि विज्ञान ने मनुष्य को वह टेक्नोलॉजी दी है, जो हवा, पानी, जमीन, समुद्र, आकाश आदि सभी का निर्मम दोहन व दुरुपयोग करने की क्षमता देती है। जब मनुष्य के जीवन का आधार और उसका सभी प्रकार का पर्यावरण प्रदूषित होगा, तो विज्ञान के किसी भी प्रयास के होने पर भी मनुष्य बीमार रहेगा। दूसरी तरफ संसाधनों के दोहन का लालच बढ़ता चला जायेगा, जो मनुष्य में असन्तोष पैदा करेगा। स्वस्थ शरीर और मानसिक सन्तोष सुखी जीवन की मूलभूत शर्तें हैं। विज्ञान इन दोनों को उपलब्ध नहीं करा सकता। विज्ञान के सहारे सुखी जीवन एक स्वप्न ही रहेगा। तो क्या विज्ञान को छोड़ दिया जाये? बीमारी व प्रदूषण तो विज्ञान के दुरुपयोग के परिणाम हैं, इसमें विज्ञान का क्या दोष है?

वर्तमान में विज्ञान का दोष यह है कि आज विज्ञान का बोलबाला इतना बढ़ गया है कि जीवन का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं बचा, जहाँ विज्ञान का हस्तक्षेप न हो। विज्ञान ने प्रत्येक क्षेत्र की तकनीक दी, लेकिन इस तकनीक का कहाँ, कितना और कैसे प्रयोग करना है, यह नहीं बताया। आधुनिक विज्ञान यह मार्गदर्शन दे भी नहीं सकता, क्योंकि आधुनिक विज्ञान केवल जड़ पदार्थ का अध्ययन करता है। जड़ पदार्थ में उपयोग तो होता है, प्रयोजन नहीं होता। आधुनिक विज्ञान को प्रयोजन कौन दे सकता है? यह कार्य वेदविज्ञान ही कर सकता है। वेद-विज्ञान सभी क्षेत्रों का मार्गदर्शन कर सकता है। वर्तमान में वेदविज्ञान आधुनिक विज्ञान को कैसे मार्गदर्शन दे सकता है, यह अति महत्त्वपूर्ण और मानवता

के हित का कार्य श्रद्धेय आचार्य अग्निव्रत जी ने वैदिक विज्ञान के ग्रन्थ 'वेदविज्ञान-आलोक:' एवं 'वेदार्थ-विज्ञानम्' को तैयार करके कर दिया है। यह मानवता की महान् सेवा है। आचार्य जी 'वैदिक फिजिक्स' चैनल के माध्यम से यह मानव कल्याण का कार्य कर रहे हैं। हम सबके हित में है कि हम इस चैनल से जुड़ें और आचार्य अग्निव्रत जी के मानव कल्याण के कार्य को आगे बढ़ायें, यही अन्तिम सुरक्षा है।

श्रद्धेय आचार्य अग्निव्रत जी नैष्ठिक ने श्री वैदिक स्वस्ति पन्था न्यास, भागलभीम (भीनमाल) जालोर, राजस्थान के एक छोटे से स्थान पर रहकर अति अल्प साधनों के साथ घोर तप करके ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ से विशाल विज्ञान को निकालकर 'वेदविज्ञान-आलोक' नामक ग्रन्थ (2800 पृष्ठ) जनभाषा (हिन्दी) में दिया है। 'वेदविज्ञान-आलोक' ग्रन्थ महान् वैज्ञानिक न्यूटन के ग्रन्थ 'प्रिन्सीपिया' से भी महत्त्वपूर्ण है। महाभारत काल से वर्तमान तक के 5000 वर्षों में एक महर्षि दयानन्द सरस्वती ऐसे वेद मनीषी थे, जो वेद को प्रत्येक दृष्टि से स्थापित कर सकते थे, लेकिन हमारा दुर्भाग्य था कि हम गुलाम थे, अंग्रेजों ने उनकी हत्या करवा दी। ऋषि के बाद वर्तमान में आचार्य अग्निव्रत जी के माध्यम से हमारा भाग्योदय हुआ है। वैदिक फिजिक्स यू-ट्यूब चैनल के माध्यम से प्रबुद्ध लोगों को वैदिक विज्ञान से जोड़ने का कार्य आचार्य जी अपने सीमित साधनों से कर रहे हैं। हम और हमारी सरकार यदि वेदभक्त हैं, देशभक्त हैं और अपनी संस्कृति से प्रेम करते हैं, तो आचार्य अग्निव्रत जी के वेद को प्रतिष्ठित करने जैसे ठोस और महत्त्वपूर्ण कार्य में भरपूर सहयोग दें, यह अद्भुत अवसर है।

* * * * *

22. आर्यसमाज की आवश्यकता—

1. आवश्यकता

1. मनुष्य सामाजिक प्राणी है अर्थात् समूह में रहता है। मानव समूह की सबसे छोटी इकाई परिवार है और सबसे बड़ी इकाई विश्व है अर्थात् यह सारी दुनिया है। इस परिवार से विश्व स्तर के समूह में एक मूलभूत नियम कार्य करता है कि प्रत्येक स्तर का समूह अपने से छोटे व बड़े समूह को प्रभावित करता है।

2. प्रभाव की दिशा— प्रभाव अच्छा-बुरा, सहायक-विरोधी, उत्थान-पतन, कमजोर या बलवान करने वाला दोनों प्रकार का हो सकता है। हम सभी चाहते हैं कि हम सुख, समृद्धि व उन्नति की ओर बढ़ें।

3. क्योंकि हम समूह का एक हिस्सा हैं। समूह हमें आगे बढ़ाने वाला व सुख-शान्ति देने वाला हो, यह हमारी आवश्यकता हुई। ऐसा समूह जो हमें आगे बढ़ाता है, समाज कहलाता है। ऐसा समूह, जो हमें आगे नहीं बढ़ाता, उसे समाज नहीं कहते।

4. आगे बढ़ाने वाले समूह को समाज कहा है, तो निश्चित रूप से ऐसे समाज की कुछ मर्यादाएँ व नियम भी होंगे। हम बिना सोचे-समझे कुछ का कुछ करते चले जाएँ और हम आगे भी बढ़ें, सुख-शान्ति भी बढ़े, यह नियम के विरुद्ध होने से सम्भव नहीं होगा। तो जो समाज हमें आगे बढ़ाये, सुख-शान्ति की तरफ ले जाए, वही समाज अच्छा होगा। अच्छे समाज का नाम ही आर्यसमाज है, क्योंकि आर्य का अर्थ है— अच्छा, श्रेष्ठ, बढ़िया। तो हमें आर्यसमाज की आवश्यकता हुई।

2. आर्यसमाज कैसे अच्छा? — अच्छा समाज— आर्यसमाज, अच्छा वह जो आगे बढ़ाये और सुख-शान्ति बढ़ाये। यह तभी होगा, जब हम कुछ नियमों या मर्यादाओं के अनुसार व्यवहार और कार्य करें। तो आर्यसमाज के कौन से नियम हैं, जो हमें आगे ले जायेंगे? किसी भी समाज के नियमों के आधार पर ही उसका मूल्यांकन होगा कि वह कितना उपयोगी होगा।

3. आर्यसमाज के नियम— नियमानुसार व्यवहार सुख-समृद्धि की आवश्यक शर्त है। आर्यसमाज सबसे पहले इस सारी सृष्टि को रचने वाले और सृष्टि को नियम में चलाने वाले ईश्वर को मानता है। ईश्वर सृष्टि रचना आत्माओं के कल्याण के लिए करता है, तो आर्यसमाज एक ईश्वर की स्तुति-उपासना करने की बात कहता है, किसी ईश्वर अवतार की उपासना-ध्यान की बात नहीं करता, क्योंकि ईश्वर निराकार व सर्वव्यापी होने से अवतार नहीं लेता। ईश्वर मानव को मार्गदर्शन वेदों के माध्यम से देता है, तो आर्यसमाज वेद को ईश्वर का दिया ज्ञान मानता है। हम किसी सत्य बात पर चलकर ही आगे बढ़ सकते हैं, तो सत्य बात कौन सी है? आर्यसमाज किसी भी सत्य बात को जानने के लिए पाँच परीक्षाओं या कसौटियों को आधार बनाता है। पाँच परीक्षाओं (सृष्टि नियम, आठ प्रमाण, वेद, आत्मानुसार व आप्त वचन) के अनुसार बात है, तो मान ली जाती है, अन्यथा नहीं मानी जाती।

सत्य बात मानने व असत्य बात छोड़ने पर जोर दिया गया है और यह आर्यसमाज के नियमों में एक नियम भी है। ऐसा नियम आप दुनिया के किसी समाज या संगठन में नहीं पायेंगे। नियमानुसार चलकर और सत्य का ग्रहण करके आर्यसमाज क्या करना चाहता है? यह भी

आर्यसमाज का नियम है कि संसार का उपकार करना चाहता है। इसमें भी दो बातें विशेष हैं— पहले आर्यसमाज का दायरा सारी मानवता है और दूसरे यह मानवता की भलाई भी पूरी तरह अर्थात् शरीर से, आत्मा से और सामाजिक रूप से करना चाहता है। मनुष्य समाज का अंग है, इसलिए समाज की उपेक्षा न करे, यह भी नियम बना दिया कि कोई केवल अपनी उन्नति तक सीमित न रहे, समाज का भी ध्यान रखे। समाज के लोगों में तालमेल बना रहे, इसका भी नियम दिया कि सामाजिक मामलों में कोई मनमर्जी न करे। समाज में सबको साथ लेकर चलने का भी नियम रखा कि सबसे प्रीतिपूर्वक व धर्मानुसार यथायोग्य व्यवहार रखें। एक विशेष नियम और है, जो अन्यत्र किसी समाज या संगठन में नहीं मिलेगा, वह है— विद्या की वृद्धि व अविद्या का नाश।

4. आर्यसमाज के दो नियम— सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए। अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए। ये नियम संसार में किसी भी संगठन के पास नहीं हैं। वर्तमान में आर्यसमाज की आवश्यकता इन दो नियमों की दृष्टि से ही सबसे अधिक है। किसी भी वस्तु की ठीक-ठीक जानकारी अर्थात् सत्य के आधार पर जानकारी विद्या है और इसके विपरीत जानकारी अविद्या है। अन्धविश्वास, गुरुडम, मत-पन्थ, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक व धार्मिक मतभेद, विभिन्न मतभेदों के परिणामस्वरूप संघर्ष, वैर-विरोध, शोषण आदि, ये सब अविद्या अर्थात् सत्य जानकारी के अभाव के परिणाम हैं। इन सभी बुराइयों के बढ़ते जाने, वह भी उस समय जब विज्ञान का विकास भी बराबर हो रहा है, का कारण आर्यसमाज के नियम 'सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए' को न मानना ही है। आर्यसमाज के ये दोनों नियम वर्तमान में

सभी प्रकार के ढोंग, पाखण्ड, छल-फरेब, अन्धविश्वास व शोषण को समाज के जीवन से हटाने के लिए आवश्यक हैं।

5. आर्यसमाज से जुड़ाव की कमी के कारण— आर्यसमाज से जुड़ाव की कमी के दो मुख्य कारण हैं— आर्यसमाज अन्य संगठनों की तरह लॉलीपॉप नहीं देता, सब्जबाग नहीं दिखाता, जैसे गुरु की शरण में आने से कल्याण हो जाएगा, हरि का नाम भजने से हरि का हो जाएगा, किसी तीर्थ यात्रा से, काँवड़ लाने से या कोई अनुष्ठान करने से सब कल्याण हो जाएगा। आर्यसमाज कर्मफल-सिद्धान्त को मानता है, जिसके अनुसार कर्म का फल भोगना ही पड़ेगा, ईश्वर भी उसे माफ नहीं करता। आर्यसमाज के अनुसार ईश्वर उसी प्रार्थना को सुनता है, जब हम किसी अच्छे कार्य के लिए अपने पूर्ण पुरुषार्थ के बाद ईश्वर से सहायता माँगते हैं। यदि कार्य अच्छा नहीं है या हम पुरुषार्थ नहीं कर रहे हैं, तो ईश्वर ऐसी प्रार्थना नहीं सुनता। अन्य धार्मिक-सामाजिक संगठनों में बहुत सारे आसान तरीके (शॉर्टकट) बताए जाते हैं, जहाँ ठीक जानकारी के अभाव में भीड़ जमा हो जाती है। दूसरा कारण यह है कि आर्यसमाज के सिद्धान्तों को ठीक से न समझने व समझाने की कमी चली आ रही है। सिद्धान्तों की ठीक समझ न होने के कारण हम पूरे जोर-शोर के साथ न तो उस सिद्धान्त के अनुसार कार्य कर सकते हैं और न ही उस सिद्धान्त के साथ प्रत्येक परिस्थिति में खड़े रह सकते हैं।

आर्यसमाज के सिद्धान्तों की राजनैतिक व आर्थिक समझ ठीक से न होने के कारण हमारे राजनैतिक व आर्थिक मामलों के निर्णय ठीक नहीं होंगे, परिणामस्वरूप जनहित नहीं होगा और जनसाधारण आर्यसमाज से नहीं जुड़ पाएगा। उदाहरण के लिए आर्यसमाज में अग्निहोत्र को

सर्वश्रेष्ठ कार्य माना जाता है। अग्निहोत्र घी व सामग्री के बिना नहीं हो सकता। सामग्री कृषि उत्पाद है और घी गाय उत्पाद है। गाय और कृषि जुड़े हुए हैं। अब कोई नीति, व्यवस्था या कानून जो कृषि व पशुपालन को कमजोर करेगा, उसका समर्थन या विरोध सिद्धान्त की स्पष्ट समझ तय करेगी। आर्यसमाज के सिद्धान्तानुसार जीवनयापन के सभी साधन ईश्वर के दिए हुए हैं, जो सबके उपयोग के लिए हैं। अब कोई प्रक्रिया या कानून, जो जीवनयापन के साधनों के अपव्यय या केन्द्रीकरण की छूट देता है, उसका समर्थन एक आर्यसमाजी कैसे कर सकता है? यदि आर्यसमाज ऐसी व्यवस्था या कानून का समर्थन करता है, तो उसको सिद्धान्त स्पष्ट नहीं हैं या वह सिद्धान्तों के प्रति समर्पित नहीं है। ऐसी अवस्था में जनसाधारण आर्यसमाज से दूर चला जाएगा, जुड़ेगा नहीं। वर्तमान में आर्यसमाज को दोहरी मार झेलनी पड़ रही है— अविद्या का बढ़ते जाना और सिद्धान्तों की ठीक समझ का कम होते जाना। परन्तु इन सबका यह अभिप्राय तो कदापि नहीं है कि अच्छे जीवन के लिए आर्यसमाज की आवश्यकता नहीं है।

आर्यसमाज के सिद्धान्त सार्वभौमिक, सार्वकालिक व सर्वहितकारी हैं। मानव समाज का कल्याण आर्यसमाज को आगे बढ़ाने में ही है।

* * * * *

23. प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफ.डी.आई.)

पिछले कुछ वर्षों में कुछ तीखे विरोधाभास देखने को मिले। देश में कांग्रेस का लम्बे समय तक शासन रहा। कांग्रेस ने अपने बापू गांधी की जी भर के उपेक्षा की। गांधी कहता था कि राज्य मिलने पर पहला कानून

गोहत्या बन्दी का बनाऊँगा। गांधी के चेलों का राज्य आया और गोहत्या को चार चाँद लगे, यानि द्रुत गति से गोहत्या होने लगी। गांधी कहता था कि यदि कुछ समय के लिए भी मुझे सत्ता मिले, तो मैं बिना मुआवजा दिये शराब के कारखाने व दुकानें बन्द करवा दूँ। गांधी के चेलों ने प्रत्येक गली-मुहल्ले तक शराब उपलब्ध करवाने का कीर्तिमान स्थापित किया। गांधी कहता था कि स्वराज्य प्राप्ति पर अन्तिम व्यक्ति को नीतियों व योजनाओं का लाभ मिलेगा। चेलों के राज्य में शीर्ष व अन्तिम का अन्तर लगातार बढ़ता गया। गांधी सर्वधर्मसमन्वय का बड़ा कायल था, चेलों के राज्य में धार्मिक व साम्प्रदायिक वैमनस्य चौड़ा होता चला गया और चेलों का वोट हथियाने का हथियार बना। गांधी जात-पात का विरोध करता था और उनके चेलों ने दलितों का मसीहा बनने की ललक पर वोट हथियाकर कुर्सी जमाने की चिन्ता में सफलता मानी।

गांधी अहिंसा का पुजारी था, इस एक बात में गांधी के चेलों ने गांधी दर्शन की अहिंसा को आगे बढ़ाया और देश को चीन व पाकिस्तान के हाथों कई बार लहूलुहान करवाया। गांधी का अहिंसा दर्शन चेलों ने इतना आगे बढ़ाया कि यह अहिंसा देशवासियों की नींद की हिंसा प्रतिदिन कर रही है। गांधी के चेलों के प्रगतिशील दौर में कांग्रेस से अलग एक और चेहरा उभरा। यह चेहरा कहने-सुनने में कांग्रेस से बिलकुल भिन्न लगने वाला है, यह गोभक्त, देशभक्त, संस्कृति रक्षक व धर्मरक्षक चेहरा है। इस चेहरे का नाम वर्तमान में बी.जे.पी. है, बी.जे.पी. ने उपरोक्त सभी कार्यों को कांग्रेस के मुकाबले कई गुणा आगे बढ़ाया। पाठकों को इस नामकरण से कुछ असहजता हो सकती है। मैं नामकरण का औचित्य न बताकर मूल विषय पर आता हूँ। अटल बिहारी वाजपेयी की देख-रेख में नये कत्लखाने खोलने के लिए अरबों रुपयों का प्रावधान किया

गया। कुख्यात आतंकवादियों को मुक्त किया गया। आर्थिक मोर्चे पर जलवे दिखाने की तैयारी के दौरान ही सत्ता से इस चेहरे को हटना पड़ गया।

हाँ, शराबबन्दी के मामले में कांग्रेस वाले चेहरे को मात देते हुए दिल्ली, हिमाचल, उत्तर प्रदेश व राजस्थान की सीमाओं से हरियाणा की नशाबन्दी को धराशायी करने का जोरदार अभियान चलाया और सफलता प्राप्त की। इस चेहरे ने नरेन्द्र मोदी नाम का मुखौटा लगाया और सबसे उपेक्षित वर्ग किसान व मजदूर की कायाकल्प करने का शंखनाद किया। स्वयं को चाय बेचने वाला मजदूर घोषित किया। चेहरा बदलने व नये शंखनाद करने का परिणाम आया, क्योंकि गांधी के पुराने चेलों के पैंतरे पुराने पड़ गये थे। आखिर मुखौटा तो मुखौटा ही होता है और परिणाम हुआ— मांस निर्यात में 8% बढ़ोतरी, किसान-मजदूर की पहले से भी बुरी हालत, बड़ी-बड़ी चोरियों में बढ़ोतरी, जाति-पाति की दीवार की मजबूती, संस्कृति के नाम पर ढोंग-पाखण्ड की शेखी।

नये चेहरे का जलवा तब देखने को मिला, जब नये चेहरे ने एफ.डी.आई. (प्रत्यक्ष विदेशी निवेश) को 100% हरी झण्डी दे दी। नये चेहरे ने पुराने चेहरे की एफ.डी.आई. का घनघोर विरोध किया था, देशविरोधी और गरीबविरोधी बताया था, हालांकि पुराने चेहरे ने भ्रम में डालने के लिए कुछ शर्म करते हुए यह शर्त रखी थी कि विदेशी निवेश से जो कारोबार चलेगा, उसमें 30% कच्चा सामान देशी स्रोतों से लेना होगा, ताकि कुछ देशी धन्धे भी चलते रहें। नये चेहरे ने अपनी राष्ट्रभक्ति को परवान चढ़ाते हुए विदेशी निवेश को पूर्ण अधिकार (फुल ऑथोरिटी) देते हुए सभी बन्धनों से मुक्त कर दिया। अब कोई जलवा दिखाया है, तो जलवे को

स्थापित करना भी मजबूरी है। एफ.डी.आई. के लिए जो तर्क दिये जाते हैं, वे निम्न प्रकार हैं—

विदेशी निवेश के पक्ष में एक तर्क दिया जाता है कि हमें विदेशी तकनीक के लिए विदेशी निवेश करवाना पड़ता है। इससे विदेशी तकनीक मिल जायेगी। यह बात इतनी स्पष्ट व सरल है कि एक साधारण सा ग्रामीण भी जानता है कि कोई विदेशी किसी तकनीक का लाभ स्वयं उठायेगा या किसी दूसरे को उठाने देगा? नहीं उठाने देगा और अनुभव भी यही कहता है कि चाहे कम्प्यूटर का मामला हो, चाहे क्रायोजेनिक ईंजन की बात हो, सभी प्रयासों के बावजूद भी वे तकनीके हमें नहीं मिलीं। हथियार उद्योग दुनिया का सबसे बड़ा उद्योग है, क्या हथियार बनाने वाले देश नये हथियारों की तकनीक आपको देंगे? आज छोटी सी जानकारी का भी लोग पेटेन्ट करवा लेते हैं, तो किसी महत्त्वपूर्ण तकनीक को आपको दे देंगे? कदापि नहीं। तकनीक तो आपको स्वयं विकसित करनी होगी, कोई दूसरा आपको न तो तकनीक देगा और न ही आपके लिए कोई तकनीक ईजाद करेगा। एफ.डी.आई. के साथ तकनीक की बात जोड़ें, तो एफ.डी.आई. के तहत कोई विदेशी यहाँ किराणा का धन्धा करता है या सड़क-पुल बनाता है, मकान बनाता है, किसी धन्धे का हिसाब-किताब रखता है, तो इसमें कौनसी तकनीक की आवश्यकता है, जो हमारे पास नहीं है और उनके पास है? इन धन्धों का ठीक मैनेजमेंट करने के लिए वह क्या करेगा? यदि अपने व्यक्तियों से कार्य करवायेगा, तो आपको क्या लाभ? यदि आपके लोगों से ठीक कार्य करवायेगा, तो आप अपने लोगों से ठीक कार्य क्यों नहीं करवा सकते?

दूसरा तर्क दिया जाता है— पूँजी का। हमारी सरकार के पास धन्धों

में लगाने के लिए पूँजी नहीं है, इसलिए विदेशियों को विभिन्न धन्धों में पूँजी लगाने के लिए बुलाया जाता है, ताकि धन्धे चलें और देश व सरकार का कार्य चले। यह बात मिट्टी ढोने वाला गधा भी जानता है कि कोई विदेशी किसी दूसरे देश में पैसा लगाता है, तो वह दो पैसे कमाने के लिए लगाता है, न कि उस देश की अर्थव्यवस्था को सुधारने के लिए या वहाँ के लोगों को रोजगार देने के लिये। मूल प्रश्न यह भी है कि पूँजी किसे कहते हैं ? क्या गांधी की फोटो वाले या अब्राहिम लिंकन की फोटो वाले कागज के टुकड़े पूँजी हैं ? या किसी फर्म, कम्पनी या शेयर मार्केट की गारंटी पूँजी है ? क्या है पूँजी ? वास्तविक पूँजी हवा, पानी, जमीन, खनिज, वन, पहाड़ और श्रम है। अब बताइये किसी भी क्षेत्र का विदेशी निवेश उपरोक्त पूँजी में कौनसी पूँजी आपके लिए बाहर से लायेगा ? रही बात रोजगार की, तो यह भी स्पष्ट है कि मुनाफा ज्यादा लेने के लिए लागत कम आनी चाहिए। लागत कम तब आयेगी, जब कच्चा माल सस्ता मिले और प्रोसेसिंग खर्च कम तब आयेगा, जब मजदूरी कम लगे। मजदूरी कम तब लगेगी, जब कम मजदूर लगें और उनको मजदूरी भी कम ही दी जाये। मुनाफा ज्यादा तब होता है, जब माल ज्यादा बिके। माल ज्यादा तब बिकता है, जब ग्राहक ज्यादा हों और मुकाबले में दूसरे माल बेचने वाले कम हों।

यह स्वाभाविक है कि विदेशी निवेश स्थानीय व्यापारियों को हतोत्साहित करेगा और उनको मार्केट से बाहर करने के सब हथकण्डे अपनायेगा। कम से कम मजदूर कम से कम पगार पर रखेगा। शत-प्रतिशत छूट देकर छोटे-मोटे सहायक धन्धों को आसानी से उजाड़ा जा सकता है। कोई भी धन्धा हो, वह हवा, पानी, जमीन व श्रम को खाता है। हवा, पानी, जमीन और श्रम, ये संसाधन हैं। संसाधन हमारे और

मुनाफा विदेशियों का, यह हुआ एफ.डी.आई.। प्रश्न सरकार के पास पूँजी न होने का था, जिसकी वजह से धन्धे नहीं चल पा रहे थे और सरकार घाटे में चल रही थी, जिससे निकलने के लिए विदेशी निवेश को छूट दी गई। आप क्या सोचते हैं कि विदेशी कम्पनी आपको घाटे से निकालकर आपको मजबूत पैरों पर खड़ा करना चाहती है, ताकि आप मजबूत बनकर विदेशी पूँजी पर निर्भर न रहें और जब चाहें विदेशी कम्पनी को अपने हिसाब से चला सकें?

अब जो कम्पनी विदेश में धन्धा कर रही है, वह तो इस प्रकार का खतरा नहीं उठाना चाहेगी कि उसके धन्धे को किसी प्रकार की कठिनाई का सामना करना पड़े, हाँ आप ख्याली पुलाव पकाकर पेट भरना चाहें, तो आपकी मर्जी। हमें ख्याली पुलाव की सुगन्ध से बचने की चेतावनी (वार्निंग) हमारा इतिहास चिल्ला-चिल्ला कर दे रहा है। इतिहास स्पष्ट बता रहा है कि विदेशी निवेश देशी धन्धों को नेस्तनाबूद कर देगा और भविष्य को सुरक्षित करने के लिए शीघ्र ही आपका मालिक बन बैठेगा। जिसका अर्थव्यवस्था पर नियन्त्रण होता है, राजनैतिक वर्चस्व भी उसी का होता है। यह अर्थशास्त्र व राजनैतिक शास्त्र का अटल सत्य (नियम) है। नियम के सामने किसी की कोई नहीं चलती। क्या बी.जे.पी. जैसी चेहरेवादी पार्टी या मोदी जैसा चेहरावादी नेता अपने आपको नियम से ऊपर मानता है? यदि ऐसा है, तो या तो ये ख्याली पुलाव पका रहे हैं या जनता का ख्याली पुलाव से पेट भरने का भ्रम फैला रहे हैं।

जैसा कि नियम है कि विदेशी निवेश मुनाफा चाहेगा, तो मुनाफे के लिए बाजार पर नियन्त्रण आवश्यक है। बाजार पर नियन्त्रण के लिए जो हथकण्डे अपनाने पड़ेंगे, वे हथकण्डे यदि आपकी सेहत, आपकी

संस्कृति या आपके पर्यावरण की बलि चाहते हैं, तो विदेशी निवेश को क्या चिन्ता? क्या मुखौटा सरकार इस नियम की भी अनदेखी करेगी? यदि ऐसा है, तो क्या कबूतर के आँख बन्द करने से बिल्ली भाग जाती है? अब प्रश्न है कि मुखौटा न लगायें, तो क्या करें? सरकार तो चलानी है। समाधान एक ही है कि अपने संसाधनों का अपनी आवश्यकतानुसार, अपने ढंग से और अपने लोगों को आगे बढ़ाकर प्रयोग करें। क्या यह तथ्य नहीं है कि विदेशों में हमारे डॉक्टर, इंजीनियर, कम्प्यूटर जानने वाले, होटल आदि चलाने वाले और विज्ञान के होनहार छात्र बड़ी संख्या में हैं। इन सबकी शिक्षा व ट्रेनिंग का खर्च देश उठाता है और सेवाएँ विदेशी लेते हैं। अपनी आवश्यकता के कार्यों को अपने लोगों द्वारा करवा कर और उन्हें विकसित करके क्या हम ज्यादा रोजगार नहीं दे पायेंगे? जो सुविधाएँ विदेशी निवेशकों को देने की योजना बना रहे हो, क्या उन सुविधाओं को अपने लोगों को देकर आगे नहीं बढ़ा सकते?

कागज की पूँजी के लिए भ्रष्ट लोगों के सामने सख्ती व निष्पक्षता से पेश आयें। कुर्सी के लालच के आगे राष्ट्रीय लालच को आगे रखें। विदेशी दबाव में न आयें, क्योंकि विदेशी दबाव में आने पर दबाव बढ़ता है घटता नहीं, इस ऐतिहासिक तथ्य को याद रखें। इतिहास को भूलेंगे, तो इतिहास दोहरायेगा, जो बहुत ही तकलीफ देने वाला और निर्दयी है। अपनी जिन्दगी के कुछ दिन या पल आराम से गुजारने के बदले आगामी पीढ़ियों को नरक में धकेलना पाप है। याद रखें, आपकी संस्कृति आपको बता रही है।

* * * * *

24. वैदिक अर्थशास्त्र व राजनीति

वेद को ईश्वरीय ज्ञान माना जाता है। वेद का ज्ञान ईश्वर ने मनुष्य को दिया, ताकि मनुष्य सुखी जीवन जीये और मोक्ष प्राप्त करे। सभी रचनाएँ प्रकृति से ईश्वर ने बनाईं। मनुष्य के अतिरिक्त सभी योनियाँ (सभी प्रकार के जीव-जन्तु) भोग योनियाँ हैं और मनुष्य कर्म व भोग दोनों प्रकार की योनि (शरीर) है। मनुष्य के साथ सभी जीव-जन्तुओं के जीवनयापन हेतु साधन (खाने-पीने, रहने-सहने की सामग्री) ईश्वर ने बनाये। निष्कर्ष यह हुआ कि मनुष्य समेत सभी जीव-जन्तु परमात्मा की रचना होने से परमात्मा की सन्तति हुई और परमात्मा के बनाए जीवन जीने के साधनों पर परमात्मा की सभी सन्तानों का बराबर अधिकार हुआ। यह भी स्पष्ट है कि पृथ्वी पर जीवन के साधन असीमित नहीं हैं। यदि जीवन के संसाधनों का उपयोग व संग्रह असन्तुलित व असमान होगा, तो एक जगह संग्रह और दूसरी जगह अभाव होगा और संसाधनों के दुरुपयोग (आवश्यकता से अधिक दोहन) का दुष्प्रभाव दूसरों को भोगना पड़ेगा। इस प्रकार यह अनिवार्य हुआ कि वेद जीवन जीने के संसाधनों के बारे में ऐसे निर्देश दे कि परमात्मा की सभी सन्तानों का जीवन सुखपूर्वक चल सके। संसाधनों के इस प्रकार के निर्देश ही वैदिक अर्थशास्त्र है। वैदिक अर्थशास्त्र के कुछ निर्देश निम्न प्रकार हैं—

1. मोघमन्नं विन्दते अप्रचेता: सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य।

   (ऋग्वेद 10.117.6)

   अर्थात् तू बिना परिश्रम का अन्न मत खा, यह तेरा सत्यानाश कर देगा, मैं सत्य कह रहा हूँ।

2. केवलाघो भवति केवलादी। (ऋग्वेद 10.117.6)

अर्थात् अकेला खाने वाला पाप खाता है।

3. असुरा स्वेष्वेवास्येषु जुहति अन्योऽन्यस्मिन् हऽवै देवाः।
(शतपथ ब्राह्मण 11.1.8.1-2)
अर्थात् औरों के भूखे रहते अकेले खाना राक्षसवृत्ति है।

4. ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥ (यजुर्वेद 40.1)

अर्थात् जगत् की प्रत्येक वस्तु में ईश्वर व्यापक है। दूसरे के पदार्थों को अन्याय से लेने की इच्छा मत कर। ये संसाधन ईश्वर के दिये हैं, इनका त्यागपूर्वक भोग कर।

5. न वा उ देवाः क्षुधमिद्वधं ददुः। (ऋग्वेद 10.117.1)
अर्थात् देश में कोई भी भूखा-प्यासा न रहे।

6. समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः। (अथर्ववेद)
अर्थात् सभी मिलकर खायें-पीयें अर्थात् सभी की भौतिक आवश्य-कताएँ समान रूप से पूरी हों।

7. स नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे। (अथर्ववेद 12.1.8)
अर्थात् उत्तम कृषि के बिना कोई राष्ट्र बलवान् नहीं बन सकता।

8. वैदिक राष्ट्रीय प्रार्थना 'दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः' (यजु.22.22) में दुधारू गौवें, बैल, अश्व आदि की प्रार्थना की है।

जैसे माता-पिता को सभी सन्तान एक जैसी होती हैं और वे उनमें भेदभाव नहीं करते, इसी प्रकार मनुष्य सहित सभी प्राणी ईश्वर की सन्तान हैं, तो ईश्वर की वेद वाणी में स्पष्ट निर्देश है कि कोई भूखा-प्यासा न रहे, सभी की आवश्यकताएँ पूरी हों और सभी मिलकर साधनों का

उपभोग करें। शोषण व अन्याय न हो, इसके लिए कहा कि बिना परिश्रम का अन्न मत खा। ऐसा निर्देश देकर शोषण-अन्याय पर एकदम ब्रेक लगा दिये। मान लो मेहनत करके बहुत साधन जुटा लिए, तो आगे निर्देश दिया कि तू अकेले न खा अर्थात् अपने साधनों को दूसरों को भी दे। यदि दूसरों को देने के बाद भी प्रचुर मात्रा में साधन उपलब्ध हैं, तो आगे निर्देश करके बताया कि ये साधन तेरे बाप-दादा के नहीं हैं, ईश्वर के दिये हुए हैं, इन पर सभी का समान अधिकार है, इसलिए तू जीवन जीने के लिए साधनों का प्रयोग तो कर, परन्तु इनका भोग त्यागपूर्वक कर। यहाँ दो बातें स्पष्ट हैं कि साधनों की फिजूलखर्ची न कर और साधनों का लालच करके अनुचित संग्रह न कर।

यह सब कैसे हो पायेगा, तो उपाय के रूप में बताया कि उत्तम खेती कर। भोजन की पूर्ति के लिए खेती व गाय और ऊर्जा की पूर्ति के लिए बैल, घोड़ा, ऊँट, हाथी आदि के प्रयोग का निर्देश दिया। जीवन को ठीक से चलाने के लिए कृषि व पशुपालन का उपाय बताया गया। कृषि व पशुपालन भोजन वा ऊर्जा की पूर्ति के साथ-साथ प्राकृतिक संतुलन (हवा, पानी, जमीन व अन्य प्राणि जगत्) भी बनाये रखते हैं और जीवन अबाध रूप से चलता रहता है। यदि कोई यह समझे कि ऊर्जा के लिए पशुओं की प्रार्थना करना विज्ञान की उन्नति के विपरीत बैलगाड़ी के युग में जाना है, तो यह जान लेना आवश्यक है कि खनिज ईंधन (डीजल, पेट्रोल, गैस, कोयला, यूरेनियम) ज्यादा से ज्यादा 100 वर्ष चल सकता है। सौर ऊर्जा से सोलर पैनल व बैटरियों का कबाड़ हिमालय जैसे पहाड़ बना देंगे और पृथ्वी पर रहने की जगह कम पड़ेगी। हाइड्रोजन बनाने के लिए पानी के अणुओं को तोड़ने के लिए बिजली चाहिए, वह कहाँ से आयेगी ? इसलिए पशु ऊर्जा ही शाश्वत ऊर्जा है।

वेद खेती व पशुपालन का निर्देश देकर ज्ञान-विज्ञान का विरोध नहीं कर रहा। वेद में मानव को निर्देश दिया है कि तू तिनके से लेकर ईश्वर तक का ज्ञान प्राप्त कर और मोक्ष को प्राप्त कर। यदि हम वेद और ईश्वर को मानते हुए विज्ञान की उन्नति करते हैं, तो वैज्ञानिक उन्नति प्राणी व प्रकृति का शोषण व अनुचित दोहन नहीं करेगी और यदि वेद व ईश्वर की उपेक्षा करके विज्ञान की उन्नति की जाती है, तो यह वैज्ञानिक उन्नति शोषण व संसाधनों के अनुचित दोहन का कारण बनती है, जैसा कि वर्तमान में हो रहा है। वर्तमान में यदि वैज्ञानिक उन्नति पर वेद व ईश्वर का अंकुश नहीं लगता है, तो मानव के साथ अन्य प्राणियों का जीवन भी संकट में पड़ना तय है, क्योंकि विज्ञान मानव को वह क्षमता दे रहा है, जिस पर किसी का अंकुश न होने के कारण इस पृथ्वी को किसी के लिए भी रहने योग्य नहीं छोड़ा जायेगा, जिसके परिणामस्वरूप मानव व उसकी वैज्ञानिक उन्नति नष्ट होनी निश्चित है। यही वेद का अर्थशास्त्र व मानव शास्त्र है। वेद में संसाधनों के अनुचित दोहन व संग्रह की कहीं भी अनुमति नहीं है।

राजनीति— सुखी जीवन के लिए शिक्षा, चिकित्सा, न्याय, सुरक्षा व अर्थव्यवस्था का ठीक होना आवश्यक है और ये सभी व्यवस्थाएँ राज्य व्यवस्था पर आधारित होने से राज्य की नीति कैसी हो, यह अन्तिम आधार बनता है। जीवन के आध्यात्मिक पक्ष में आगे बढ़ने के लिए जो उपयुक्त वातावरण चाहिए, वह भी बहुत कुछ राज्य व्यवस्था पर निर्भर है। वेद राजा, राज्य व्यवस्था और राजा के कर्त्तव्यों के बारे में क्या कहता है, यह वेद और मनुस्मृति में अनेक स्थानों पर वर्णित है। कुछ उद्धरण निम्न प्रकार हैं—

1. राजा और प्रजा मिलकर समग्र प्रजा को विद्या, धर्म, सुशिक्षा और धनादि से समृद्ध करने के लिए तीन सभा अर्थात् विद्यार्य सभा, धर्मार्य सभा व राजार्य सभा नियत करें। (ऋग्वेद 3.38.6)

2. एक को स्वतन्त्र राज्य का अधिकार नहीं देना चाहिए। राजा सभाधीन, राजा और सभा प्रजा के अधीन रहे।
(अथर्ववेद का. 19, अनु. 7, व. 55, मन्त्र 6)

3. हे विद्वानो व प्रजाजनो! तुम सभी तरह के सुखी-समृद्ध राज्य के लिए सम्मति करके सब तरह के पक्षपातरहित पूर्ण विद्या व विनययुक्त सबके मित्र सभापति को राजा मानो। (यजुर्वेद 9.40)

4. जो प्रजा से स्वतन्त्र स्वाधीन राजवर्ग रहे, तो वह प्रजा का नाश करता है। (शतपथ ब्राह्मण 13.2.3)

5. महान् राज्यकर्म एक व्यक्ति द्वारा कैसे हो सकते हैं। इसलिए एक को राजा और एक की बुद्धि पर राज्य के कार्य निर्भर रखना बहुत ही बुरा है। (मनुस्मृति, सप्तम अध्याय)

7. सभी सभासदों के विचार और अभिप्राय को सुनकर बहुपक्षानुसार कार्यों में जो कार्य सबका हितकारक हो, वह करना चाहिए। (मनुस्मृति, सप्तम अध्याय)

8. राजा कर इस प्रकार लेवे कि जिससे किसान आदि खाने-पीने और धन से रहित होकर दु:ख न पावें, क्योंकि प्रजा के धनाढ्य, आरोग्य रहने पर ही राज्य की उन्नति होती है। यह बात ठीक है कि राजाओं के राजा किसान आदि परिश्रम करने वाले हैं, लेकिन राजा उनका रक्षक है और वह प्रजा को अपनी सन्तान की तरह सुख देवे।

(मनुस्मृति, सप्तम अध्याय)

9. जो राजा प्रजा से कर लेकर प्रजा का पालन न करे, तो वह राजा डाकुओं के समान है। (ऋग्वेद 1.114.3)
10. जिस राजा के राज्य में दुष्ट लोग रोती विलाप करती प्रजा के पदार्थों का हरण करते रहते हैं, वह राजा अपने भृत्यों सहित मृतक है, जीता नहीं है। (मनु.)
11. सर्वोत्तम राज्य प्रबन्ध के लिए सब प्रजा को विद्वान् करके ठीक राज्य व्यवस्था चलाकर सब मनुष्यों का उत्तम सुख बढ़ायें। (यजु.9.40)

वेद और मनुस्मृति के अनुसार राज्य का अधिकार एक को नहीं है, राजा का बेटा राजा हो, यह भी जरूरी नहीं है, राज्य की अन्तिम सत्ता प्रजाजनों के हाथ में होती है। राज्य का कर्त्तव्य प्रजाजनों को समृद्ध, विद्वान् व सुखी बनाना है। वर्तमान में लोगों को निर्धन रखकर व भ्रमित करके वोट लेना है और बाद में लोगों की कोई पूछ नहीं है।

* * * * *

25. शिक्षा—

दो बातें आधारभूत हैं। मनुष्य के बच्चे को सब कुछ सिखाना पड़ता है और सृष्टि ईश्वर ने बनाई, तो सभी मनुष्य ईश्वर की सन्तान हैं और सभी मनुष्यों का जीवन जीने का अधिकार बराबर है। ये दो मूल बातें स्पष्ट करती हैं कि सभी मनुष्यों के बच्चों का शिक्षा का अधिकार बराबर है और शिक्षा प्राप्त करने के साधनों पर भी बराबर अधिकार है। इन दो

मूल बातों का सीधा परिणाम होगा कि प्रत्येक बच्चे को दी जाने वाली शिक्षा की गुणवत्ता (पाठ्यक्रम) व शिक्षा के साधन (विद्यालय की सुविधाएँ) एक जैसे होने चाहिए। सभी बच्चों के लिए समान गुणवत्ता व समान साधनों वाली शिक्षा मानव समाज की नींव है और भवन की नींव तय करेगी कि भवन कितना सुरक्षित व स्थायी है। समाज की बहुत सारी समस्याओं का समाधान यहीं से मिल जाता है।

जीवन की गुणवत्ता निर्भर करेगी कि शिक्षा में बच्चे को क्या सिखाया गया अर्थात् उसका पाठ्यक्रम कैसा था। यह भी मूलभूत बात है कि मानव जीवन के दो भाग हैं—भौतिक व मानसिक, तो पाठ्यक्रम में दोनों पक्षों का समावेश आवश्यक हुआ। यदि एक पक्ष की उपेक्षा होगी, तो जीवन में असंतुलन होगा, जो असुविधा व दुःख देने वाला होगा। यह असंतुलन केवल एक व्यक्ति तक सीमित नहीं होगा, अपितु पूरे मानव समाज को प्रभावित करेगा, क्योंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है।

भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली शिक्षा में यह मूल बात ध्यान देने की है कि भौतिक संसाधन सीमित हैं, उनका असीमित उपभोग सम्भव नहीं है और भौतिक संसाधनों पर सभी मानवों के साथ-साथ सभी जीव-जन्तुओं का भी अधिकार है। मानसिक पाठ्यक्रम में आधारभूत बात यह है कि मानव जीवन का लक्ष्य क्या है। इस बात पर विचार करते समय कि मानव जीवन का उद्देश्य सुखप्राप्ति है, इसके साथ ही यह भी ख्याल रखना होगा कि सुख साधन में नहीं, समाधान में निहित है। पाठ्यक्रम के दूसरे भाग में मानव की सभी प्रकार की समस्याओं का समाधान करने वाली सामग्री रखनी होगी।

मानव की सभी भौतिक-अभौतिक आवश्यकताओं का समाधान

करने वाली सामग्री वेद में उपलब्ध है, तो शिक्षा का अनिवार्य भाग वेद का पठन-पाठन व अनुसंधान होना चाहिए। ऐसा समाधान पृथ्वी पर बहुत दीर्घकाल तक व्यवहार में रहा है, यह अब भी सम्भव है, क्योंकि सत्य शाश्वत होता है और समाधान सत्य की ओर बढ़ना ही हो सकता है। शिक्षा मानव जीवन का वह मूल कार्य है, जो सभी समस्याओं का समाधान हो सकता है। शिक्षा सभी का मौलिक अधिकार है, यह किसी भी समाज या सरकार की पहली जिम्मेदारी है, तो शिक्षा का व्यवसायी-करण किसी भी स्तर पर नहीं होना चाहिए। यजुर्वेद 26.2 कह रहा है कि यह पवित्र वेद वाणी मानव मात्र के कल्याण के लिए है अर्थात् वेद पढ़ने-सुनने का अधिकार सबको है अर्थात् शिक्षा का अधिकार सबको बराबर है।

* * * * *

26. हिंसा-अहिंसा—

हिंसा का अभिप्राय है— किसी जीव को हानि पहुँचाना और अहिंसा हिंसा का उल्टा है अर्थात् किसी भी जीव की हानि न करना। अहिंसा को परम धर्म भी माना गया है और योगदर्शन में महर्षि पतंजलि ने योग के आठ अंगों में से पहले अंग यम में पाँच यमों के अन्तर्गत पहला अहिंसा को रखा है। अष्टांग योग का आरम्भ अहिंसा से होता है और अहिंसा को परम धर्म कहा है, तो इसका कारण है कि मनुष्य सहित सभी जीवों की सबसे मूल प्रवृत्ति है— सुखी रहना अर्थात् सुख की इच्छा सभी जीवधारियों की सबसे मूल इच्छा है। किसी भी प्रकार की हानि (मन, वचन, कर्म से) से दुःख होता है और कोई भी जीव दुःखी नहीं होना चाहता, इसलिए अहिंसा को सर्वोपरि स्थान दिया गया है।

इस प्रकार अहिंसा हुई— किसी भी जीव को किसी भी प्रकार की हानि न पहुँचाना। यह भी एक नियम है कि जो चीज या जो बात जितनी महत्त्वपूर्ण होती है, उसका दुरुपयोग या गलत अर्थ उतना ही हानिकारक भी होता है। अहिंसा का ठीक अर्थ है— अकारण किसी जीव को किसी भी प्रकार की हानि न पहुँचाना। इसका सीधा निष्कर्ष यह हुआ कि कारण मौजूद होने पर पहुँचाई गई हानि हिंसा नहीं होगी, वह अहिंसा ही कहलायेगी। उदाहरण के लिए कोई बदमाश हमारी बहन-बेटी की इज्जत पर हाथ डालता है, तो उसकी लात-घूसे या डंडे से सेवा करना हिंसा नहीं, अहिंसा होगी। यदि दुश्मन का सैनिक हमारी सीमा में घुसकर हमारी सीमा को अपने अधिकार में लेना चाहता है या देश के किसी भाग पर कब्जा करना चाहता है, तो दुश्मन की सेना का गोलियों से स्वागत करना हिंसा नहीं अहिंसा है।

हिंसा-अहिंसा के बारे में वेद क्या कहता है, यह देखना भी आवश्यक है। ऋग्वेद 9.63.5 में कहा है कि सज्जनों का साथ दो और दुष्टों का नाश करो। महात्मा बुद्ध से लेकर महात्मा गांधी तक अहिंसा की ठीक परिभाषा न समझने के कारण देश को कितनी हिंसा सहन करनी पड़ी, इतिहास इसका गवाह है। वर्तमान में संसाधनों का केन्द्रीकरण करके दूसरों का जीवनयापन संकट में डालना, लोगों को भ्रमित करना, ढोंग-पाखण्ड व अन्धविश्वास फैलाना, भ्रष्टाचार करना और शोषण करना ये सब हिंसा के अलग-अलग रूप हैं। वर्तमान में विज्ञान की तकनीकी उन्नति को हिंसा का बड़ा हथियार बनाया हुआ है। वर्तमान में हिंसा का जो रूप प्रयोग किया जा रहा है, उसे महात्मा बुद्ध व महात्मा गांधी के अनुयायी शायद ही समझ पाएँ। जितनी हिंसा गोपनीय ढंग से भलाई का चोगा पहनकर की जा रही है, वैसी हिंसा इतिहास में कभी नहीं हुई। इस

हिंसा का मूल वेदविद्या से दूर जाना है। आज वेद की शरण में आकर अहिंसा का मार्ग अपनाना पहले के मुकाबले बहुत अधिक आवश्यक है, क्योंकि चारों ओर हिंसा का ताण्डव हो रहा है।

* * * * *

27. योग का व्यवसायीकरण—

योग का शाब्दिक अर्थ है— मिलाना, जोड़ना। अध्यात्म में भी यही अर्थ है— आत्मा को परमात्मा से जोड़ना अर्थात् ईश्वर अनुभूति कर लेना। आत्मा परमात्मा से क्यों जुड़ना चाहती है? इसका कारण है— स्थायी सुख अर्थात् आनन्द प्राप्त करने के लिए। भौतिक साधनों वाले सुख स्थायी नहीं हैं और भौतिक सुखों के साथ दुःख भी जुड़ा रहता है, तो स्थायी सुख अर्थात् आनन्द का स्रोत भौतिक साधन न होकर परमात्मा ही है। आत्मा शरीर के बिना कुछ नहीं कर सकती। परमात्मा सबसे सूक्ष्म है, तो सूक्ष्म वस्तु को भौतिक शरीर जैसे स्थूल भौतिक साधन से प्राप्त करना सम्भव नहीं है।

आत्मा के पास शरीर में सबसे सूक्ष्म साधन मन है। मन के भौतिक होने के कारण इसका जुड़ाव भौतिक जगत् से होना स्वाभाविक है अर्थात् मन की गति भौतिक जगत् की तरफ होती है। इस मन को साधना से ईश्वर की तरफ ले जाने के लिए मन की गति की दिशा भौतिक जगत् से हटाकर ईश्वर की तरफ करना आवश्यक हुआ। इसलिए ही महर्षि पतञ्जलि ने योग की परिभाषा में कहा— योग चित्तवृत्ति (मन की गति) का निरोध करना है अर्थात् बाहर से रोककर ईश्वर की तरफ करने का नाम है। मन को ईश्वर की तरफ लाने के प्रयास के बहुत सारे प्रकार हो

सकते हैं, परन्तु सबसे व्यवस्थित और वैज्ञानिक तरीका महर्षि पतञ्जलि द्वारा प्रतिपादित अष्टांग योग है। जैसाकि नाम से ही स्पष्ट है, इस प्रक्रिया के आठ अंग हैं—

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान व समाधि।

जैसे कहा गया है कि यह प्रक्रिया वैज्ञानिक है, तो इसका क्रम से होना स्वाभाविक है। पहला कदम या पहली सीढ़ी या पहली शर्त यमों (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह) का पालन और दूसरी सीढ़ी नियमों (शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय व ईश्वर प्रणिधान) का पालन करना है। यम-नियमों का पालन व्यक्तिगत व सामाजिक जीवन का संतुलन बनाते हुए योगमार्ग में आगे बढ़ने की पहली शर्त है। तीसरी और चौथी सीढ़ी आसन-प्राणायाम अर्थात् शारीरिक तैयारी है। इनके बाद मन को साधने की प्रक्रिया शुरू होती है। भौतिक तैयारी की शुरुआत यम-नियमों के पालन से सम्भव है, इनकी उपेक्षा करके आसन-प्राणायाम भी नहीं सध सकते। आसन के बारे में भी योगदर्शन में स्पष्ट कहा है कि सुखपूर्वक लम्बे समय तक शरीर की जिस स्थिति में बैठ पाएँ, वही आसन है। प्राणायाम का उद्देश्य भी श्वास-प्रश्वास की क्रिया को नियन्त्रित करना है, जो मन को एकाग्र करने में सहायक है। भिन्न-भिन्न प्रकार की शरीर की मुद्राएँ व भिन्न-भिन्न प्रकार की श्वास क्रियाएँ शरीर के भौतिक स्वास्थ्य के लिए तो ठीक हैं, परन्तु इनका मन को एकाग्र करने में कोई योगदान न होने से योग से इनका कोई सम्बन्ध नहीं है।

वर्तमान में कुछ आसन-प्राणायाम की प्रक्रियाओं को योग का नाम देकर इनका मंचों पर प्रदर्शन किया जाता है। ये प्रदर्शन व्यायाम-प्रदर्शन

तो हैं, लेकिन योग से इनका कोई लेना-देना नहीं है। योग की पहली दो सीढ़ी और बाद की चार सीढ़ियों को छोड़कर केवल आसन-प्राणायाम को योग का नाम देकर प्रचार वा प्रदर्शन करना योग के व्यवसायीकरण के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। बाबा का योग के व्यवसायीकरण में बहुत बड़ा हाथ है।

* * * * *

28. क्या आर्य बाहर से आये?

इतिहास की पाठ्यपुस्तकों में महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों को पढ़ाया जाता है कि आर्य बाहर से आये थे और आर्यों ने यहाँ के मूल निवासियों को दक्षिण में धकेल दिया। यह इतिहास जिन लोगों ने बनाया, उनके दो उद्देश्य पूरे हुए— एक तो उन लोगों की तरह आर्य भी भारत के मूल निवासी नहीं हैं और दूसरे देश के उत्तर व दक्षिण में रहने वाले देशवासियों में स्थायी रूप से अलगाव बना रहे और उनको देश पर शासन करने में सुविधा रहे। यदि यही सच्चाई है, तो अंग्रेजों के जाने के बाद भी यह क्यों पढ़ा रहे हैं, इसका सीधा और स्पष्ट उत्तर है कि हम अभी तक बौद्धिक दासता से बाहर नहीं निकले हैं।

आर्य बाहर से आए, ऐसे इतिहास की सच्चाई जान लेने से पहले दो बातों पर विचार कर लेना आवश्यक है। पहली बात यह कि आर्य कोई नस्ल नहीं है, आर्य किसी भी अच्छे व्यक्ति को कहा जाता है। अच्छे व्यक्ति को आर्य और बुरे व्यक्ति को अनार्य कहा जाता है। अच्छे-बुरे अर्थात् आर्य-अनार्य सभी कालों में और सभी स्थानों पर रहे हैं, आज भी हैं। जब आर्य-अनार्य सभी स्थानों पर थे, आज भी हैं, तो आर्यों का

आना-जाना कैसे हुआ? विद्यार्थियों को आर्य किसे कहते हैं, यह बताए बिना आर्य बाहर से आये, ऐसा इतिहास पढ़ाना कितना सत्य होगा? जैसे आर्य किसे कहते हैं, यह नहीं बताया जाता। इसी प्रकार यह भी नहीं बताया जाता कि आर्य किस रास्ते से आये, रास्ते में किन लोगों से उनका संघर्ष हुआ, भारत में आने पर उनका किन से संघर्ष हुआ, कितने समय तक संघर्ष रहा, किन हथियारों का प्रयोग हुआ, कैसी सेना थी आदि कुछ नहीं बताया जाता, जैसे कि आर्यों के रास्ते में और इस देश में आने पर फूलमालाओं से स्वागत के लिए रास्ते के लोग और यहाँ के लोग तैयार बैठे थे।

सबसे बड़ी बात यह है कि ऐसे इतिहास बनाने वाले अंग्रेज भी ऋग्वेद को दुनिया की सबसे पुरानी पुस्तक मानते हैं। ऋग्वेद में किसी देश विशेष का या किसी व्यक्ति विशेष का जिक्र नहीं है। वेद की बातें सार्वभौमिक व सार्वकालिक हैं। ऋग्वेद 4.26.2 में कहा है— मैं (परमात्मा) यह भूमि आर्यों को देता हूँ। भूमि का अर्थ भारत देश नहीं है और आर्यों से अभिप्राय किसी स्थान विशेष के व्यक्तियों से नहीं है, अपितु इसका सीधा अर्थ है कि परमात्मा ने धरती अच्छे व्यक्तियों के लिए अर्थात् सदुपयोग के लिए बनाई है, न कि दुष्टों द्वारा दुरुपयोग के लिए। वेद के अनुसार भी आर्यों के आने-जाने वाली बात ठीक नहीं है। यह इतिहास अंग्रेजों द्वारा देश के लोगों को बाँटकर राज करने की नीयत से बनाया गया था। यदि हम वेद से जुड़ते हैं, तो हमें बहुत सारी बातों के साथ इस ऐतिहासिक झूठ का भी पता लगता है।

* * * * *

29. गीता-कुम्भ और गाय—

गीता महाभारत के युद्ध के अवसर पर श्रीकृष्ण जी द्वारा अर्जुन जी को दिया गया उपदेश है। गीता के उपदेश में दो मुख्य बातें हैं— अन्याय का विरोध व न्याय का पक्ष लेना और निष्काम कर्म करना। कुम्भ के मेले के बारे में प्रचलित पौराणिक कथा के अनुसार समुद्र मंथन के उपरान्त चौदह रत्न निकले, उनमें एक अमृत कलश भी था। अमृत कलश को लेने के लिए देवताओं और दानवों में झगड़ा हुआ, तो शिवजी ने रूपवती स्त्री का रूप बनाकर कलश ले लिया और वहाँ से चल पड़े। देवताओं और दानवों ने उनका पीछा किया, तो जहाँ-जहाँ घड़े से अमृत छलकता गया अर्थात् जिस-जिस स्थान पर अमृत गिरा, वहाँ मेले लगने लग गये।

दूसरी मान्यता है कि पहले के समय में अधिकतर आबादी नदियों के किनारे होती थी। आसपास के व्यक्ति नदी के किसी उपयुक्त स्थान पर किसी उपयुक्त समय में अपनी समस्याओं पर चर्चा करने के लिए संगठित होते थे। इलाहाबाद के पास तीन नदियाँ (गंगा, यमुना, सरस्वती) का संगम होने से यहाँ ज्यादा लोग आते थे। कालान्तर में ढोंग, पाखण्ड व अन्धविश्वास बढ़ने के साथ यह विश्वास भी फैला दिया गया कि संगम स्थान पर नदी स्नान से पाप धुल जाते हैं, पुण्यलाभ होता है, तो यहाँ आने वाले लोगों की भीड़ बढ़ने लग गई और यह महाकुम्भ कहलाने लगा।

गीता की प्रदर्शनी करके चित्र, पोस्टर व बैनर लगाकर गीता महोत्सव मनाने की शुरुआत हरियाणा सरकार ने की और महाकुम्भ मेले का आयोजन उत्तर प्रदेश सरकार ने शुरू किया। आम जन में प्रचार किया

गया कि गीता महोत्सव में भाग लेने से धर्म में आस्था बढ़ती है, लोग अपने महापुरुषों पर श्रद्धा करने लगते हैं और कुम्भ मेले के अवसर पर गंगास्नान से पाप कट जाते हैं। हरियाणा में हुए दो बार के गीता महोत्सव का कुल खर्च लगभग 3400 करोड़ रुपये था और कुम्भ मेले के आयोजन पर लगभग 4200 करोड़ रुपये खर्च हुए। दोनों आयोजनों का खर्च 7600 करोड़ हुआ। इस पैसे से बेसहारा गोवंश का प्रबन्ध करें, तो 60-62 लाख बेसहारा गोवंश का प्रबन्ध हो जायेगा, जहाँ 2-2 लाख लोगों को काम मिलेगा। कुम्भ मेले में लगभग 15 करोड़ लोग आस्था की डुबकी लगाने आये। यदि प्रत्येक श्रद्धालु का सभी प्रकार का खर्च जोड़ें, तो औसत खर्च 2000 रुपये से कम नहीं बैठेगा। श्रद्धालुओं द्वारा किया गया खर्च 2.5 करोड़ गोवंश को आश्रय दे सकता है और इससे 9 लाख लोगों को काम मिलेगा। इस हिसाब से लगभग 3 करोड़ गोवंश को आश्रय, 11 लाख लोगों को काम, किसान को घूमते बेसहारा पशुओं से खेती में होने वाले नुकसान से छुटकारा, खेत को पौष्टिक खाद और रसोई को स्वच्छ ईंधन मिलेगा। जब गोवंश को आश्रय देंगे, किसान को समस्यामुक्त करेंगे, जरूरतमन्द को काम देंगे, हवा और भूमि को प्रदूषणमुक्त करेंगे, तो निश्चित रूप से श्रद्धालुओं को पुण्यलाभ होगा, इसकी 100% गारंटी है। गंगास्नान से पुण्य नहीं मिलेगा।

क्या इस गणित को नेता लोग नहीं जानते? हमसे ज्यादा जानते हैं, परन्तु वे यह भी जानते हैं कि यदि आम जन समस्यामुक्त और जागरुक हो गया, तो उनका वोट लेना मुश्किल हो जायेगा और गोवंश के प्रबन्ध जैसे कार्य में कोई कमीशन या मोटी रकम हजम करने का कोई स्कोप नहीं है। आज के नेता व नौकरशाह के लिए पैसा हजम करना और वोट हासिल करना सबसे महत्त्वपूर्ण है, इसके मुकाबले गीता, कुम्भ व गाय

कुछ भी महत्त्व नहीं रखते।

* * * * *

30. फैशन—

बालों और कपड़ों का स्टाइल कैसा हो, फर्नीचर कैसा हो, कमरे के अन्दर कौनसे रंग-रोगन व लाइट हों, जन्मदिन, विवाह या पार्टी में कैसा म्यूजिक, कैसा खाना, कैसे पटाखे और किस स्थान पर हों, ये सब बातें फैशन में आ जाती हैं। फैशन को बढ़ावा देने में फिल्मी स्टार और बड़ी कम्पनियाँ मार्गदर्शक का कार्य करती हैं और नाई, दर्जी, टी.वी., ब्यूटी पार्लर आदि इस फैशन को आगे बढ़ाने वाले कार्यकर्त्ता का काम करते हैं। फैशन का बाजार युवक-युवतियाँ हैं। युवा वर्ग फैशन का ग्राहक भी है और इसका शिकार भी है। कपड़े, भोजन, फर्नीचर आदि ये सब शरीर की सुरक्षा, पोषण व सुविधा के लिए हैं, लेकिन फैशन के दौर में इन बातों का कोई मूल्य नहीं है। जैसे वर्तमान में जितना अधिक वायु, जल, जमीन व आकाश को प्रदूषित करें, उतना ही अधिक विकास माना जाता है, ठीक उसी प्रकार जितनी अन्धी नकल, जितना दूसरे से अधिक दिखावा और जितनी अधिक शारीरिक परेशानी, उतना ही अधिक आधुनिक फैशन और आधुनिक होने का मापदण्ड।

अन्धी नकल आधुनिक होने के साथ स्टैण्डर्ड का मापदण्ड भी माना जाता है। उदाहरण के लिए कपड़े ऋतु के अनुसार, शरीर को सुरक्षा देने वाले और इस प्रकार बने हों कि कार्य करने में सुविधा हो, इन बातों की उपेक्षा करके ठण्ड में भी शरीर के काफी भाग को नंगा रखना, बहुत ढीले या बहुत तंग सिले हुए, बहुत ऊँचे या जमीन पर घिसटते हुए कपड़े

पहनना, ये सब फैशन में आ जाता है। सिर के बाल पीछे गर्दन पर बड़े और कहीं एकदम छोटे ये भी फैशन है। हद तो तब हो गई, जब पैंट भी कई जगह से फटी हुई हो, तो आधुनिक और उच्च स्टैण्डर्ड में आ जाती है। दिमाग का दिवाला तो तब निकलता है, जब फटी हुई पैंट को बिना फटी पैंट, जो उसी साइज व उसी कपड़े की बनी है, से ज्यादा पैसे देकर खरीदते हैं। गर्मी में स्कूटर चलाते समय हाथों में दस्ताने पहनना और कमीज बिना बाजू वाला पहनना, ठिठुरती सर्दी में भी कोल्ड ड्रिंक पीना फैशन व स्टैण्डर्ड में आता है।

किसी भी विवाह-शादी, जन्मदिन आदि पर डी.जे. का कानों को बहरा कर देने वाला शोर-शराबा व पटाखों से आँख और कान जब तक बेहाल न हो जायें, स्टैण्डर्ड के लिए आवश्यक हैं। जन्मदिन पर केक नहीं काटा और मोमबत्ती नहीं बुझाई, तो जन्मदिन मनाना कैसे माना जाये? कपड़े, बाल, खानपान जितना शरीर के विपरीत व असुविधाजनक होगा, उतना ही ऊँचे स्टैण्डर्ड का होगा, यह आधुनिक फैशन है। हानि-कारक रंग या लिपस्टिक लगाकर होठों को लाल व नाखूनों को रंग-बिरंगा करना फैशन है। अब तो लड़के भी होठ लाल करने लग गये हैं, क्योंकि फैशन की माँग है। गर्मी में भी नेकटाई लगाना और काला कोट पहनना मानसिक गुलामी है और ऊल-जलूल फैशन करना बौद्धिक दिवालियापन है। ऐसे लोग राजनेताओं व कम्पनियों के चहेते शिकार हैं। लड़कों ने कटे-फटे कपड़े पहनने को और लड़कियों ने नंगेपन को फैशन मान लिया, इससे अधिक बौद्धिक पतन और क्या हो सकता है?

* * * * *

31. तैंतीस करोड़ देवी-देवता—

देव या देवता उसे कहते हैं, जो देता है। शतपथ ब्राह्मण में तैंतीस कोटि देवों का वर्णन है। यहाँ कोटि शब्द के दो अर्थ हैं— करोड़ व प्रकार। इनमें से कोटि का अर्थ प्रकार लिया गया है। पौराणिक बन्धुओं ने कोटि का दूसरा अर्थ करोड़ लेकर तैंतीस करोड़ देवी-देवता बना दिये। करोड़ तो बहुत बड़ी संख्या है, लाख-हजार को भी छोड़िये, तैंतीस सैकड़े अर्थात् 3300 देवी-देवताओं के नाम भी इन पौराणिक भाइयों से पूछें, तो ये बता नहीं सकेंगे।

देवता तैंतीस प्रकार के हैं और वे हैं— आठ वसु (अग्नि, वायु, पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्यौ, चन्द्रमा, सूर्य और नक्षत्र) वसु इसलिए क्योंकि ये जीवन धारण कराने में सहायक हैं। ग्यारह रुद्र (दस प्राण— प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय और ग्यारहवाँ जीवात्मा) रुद्र इसलिए क्योंकि इनके अलग होने से मृत्यु हो जाती है, जो रुलाने वाली होती है। बारह आदित्य बारह महीनों को कहते हैं। ये सब जगत् के पदार्थों का आदान अर्थात् सबकी आयु को ग्रहण करते चले जाते हैं। एक देवता इन्द्र अर्थात् विद्युत् को कहा है, क्योंकि यह सभी उत्तम ऐश्वर्यों का मुख्य हेतु है और तैंतीसवाँ देवता यज्ञ या प्रजापति है। यज्ञ को प्रजापति इसलिए कहा है, क्योंकि यज्ञ से सभी जीवों के जीवन के आधार वायु, जल व भोजन की शुद्धि होती है। परमात्मा को देवों का देव या महादेव कहा है, क्योंकि इन सब देवों को देने वाला वही है। तो कुल चौंतीस देवों में से दो देव जीवात्मा और परमात्मा चेतन हैं और बाकी सब जड़ देवता हैं। देवपूजा का अर्थ है— देवता की बात मानना और देवता का सम्मान करना। चेतन देवों में जीवन के सहयोगी माता-पिता, आचार्य और विद्वान् भी आते हैं। चेतन देवों की पूजा है—

उनकी बात मानना और उनका सम्मान करना। जड़ देवों की पूजा है— उनको प्रदूषित न करना, दुरुपयोग न करना और उनका अपव्यय न करना।

जैसे कोटि का अर्थ प्रकार न लेकर करोड़ ले लिया और आम जन को भ्रमित किया, इसी प्रकार देवपूजा को लेकर भी जनसाधारण को भ्रमित किया गया, शोषण किया गया और यदि मैं यह कहूँ कि देश की सम्पत्ति को लुटवाया गया, तो गलत नहीं होगा। देवों के नाम पर तरह-तरह के मन्दिर व पूजास्थल बनाये गये और आम जन में अन्धविश्वास फैलाया गया। पूजा का ठीक अर्थ न बताकर जड़पूजा को बढ़ावा दिया और जड़ वस्तु (देवता की मूर्ति) से कुछ कार्य सम्पन्न होने का भ्रम फैलाया गया। सोमनाथ के मन्दिर की लूट का मुख्य कारण यही भ्रम था कि शिवजी (शिवजी की मूर्ति) तीसरा नेत्र खोलेंगे और म्लेच्छ भस्म हो जायेगा। आज भी मन्दिरों में मूर्तियों में प्राण-प्रतिष्ठा व अन्धविश्वास जोर-शोर से फैलाया जा रहा है। राम, कृष्ण, हनुमान का नाम तो लेंगे, लेकिन उनकी शिक्षाओं और उनके गुणों को धारण नहीं करेंगे। यह सब देवपूजा का ठीक अर्थ न जानने के कारण ही हो रहा है।

* * * * *

32. विष द्वारा ऋषि हत्या—

अंग्रेज ने लिख दिया कि आर्य बाहर से आये और हम बौद्धिक दासों ने इसे सच मानकर पढ़ना-पढ़ाना आरम्भ कर दिया। इससे भी बड़ा एक और झूठा इतिहास परोसा गया और प्रचारित किया गया, वह है— जोधपुर नरेश जसवन्त सिंह की रखैल नन्हीं भक्तन ऋषि दयानन्द से नाराज हो

गई और उसने जगन्नाथ रसोइये को लालच देकर ऋषि को विष दिलवा दिया, जिससे ऋषि की मृत्यु हो गई। ऋषि दयानन्द की विष द्वारा हत्या महाभारत के युद्ध के तुल्य वैदिक संस्कृति की हानि थी। इतनी बड़ी घटना का इतना सरलीकरण षड्यन्त्रकारियों की कुटिलता और मानने वालों की बौद्धिक दासता को बखूबी स्थापित करता है। हद तो तब हो गई, जब इस प्रचार को भी मान लिया गया कि ऋषि ने नन्हीं भक्तन के सामने वैश्या को कुतिया कहा और जगन्नाथ को रुपये देकर चले जाने को कहा। इस दुष्प्रचार का शिकार और कोई नहीं, स्वयं ऋषि का उत्तराधिकारी आर्यसमाज हुआ।

अब हम ऋषि की विष द्वारा हत्या को इतिहास की वास्तविकता के साथ रखकर देखते हैं। अंग्रेज यहाँ व्यापार करने आया था, व्यापार पर कब्जा करने के बाद उसने रजवाड़ों को काबू किया। व्यापार और ईसाइयत का फैलाव ठीक से होता रहे, इसके लिए राजसत्ता का बना रहना आवश्यक था। ऋषि दयानन्द स्वदेशी व स्वराज की बात करके व्यापार और अंग्रेज राज को हटाना चाहते थे। उन्होंने पादरियों की बोलती बन्द करके ईसाइयत के फैलाव पर ब्रेक लगा दिया था। अंग्रेज के तीन उद्देश्यों राज्य, व्यापार एवं ईसाइयत के फैलाव के रास्ते में ऋषि दयानन्द बहुत बड़ा रोड़ा बन चुके थे। 1857 की क्रान्ति को अंग्रेजों ने बड़ी मुश्किल से दबाया था और उसे थोड़ा ही समय हुआ था। ऋषि उस समय विश्वप्रसिद्ध हो चुके थे। अंग्रेज शातिर व सयाना था, आज भी है, तो रास्ते की बाधा को हटाना था, लेकिन किसी प्रकार का जोखिम भी नहीं लेना था, तो साँप भी मर जाये और लाठी भी ना टूटे, यह उसके लिए उस समय आवश्यक था।

प्रत्येक रजवाड़े की निगरानी के लिए रेजिडेंशियल कमिश्नर तैनात थे। कर्नल प्रताप सिंह और राजा जसवन्त सिंह की माँ एक थी और तेज सिंह की माँ अलग थी, परन्तु पिता एक था, तो तेज सिंह इनका सौतेला भाई था। ऋषि मई 1883 में जसवन्त सिंह और प्रताप सिंह के आग्रह पर जोधपुर आये थे, सितम्बर खत्म होने वाला था, ऋषि ने जोधपुर से जाने को कह दिया था। 26 सितम्बर की रात को तबियत खराब हुई, 27 को सुबह तेज सिंह से किसी हिन्दू डॉक्टर को बुलाने को कहा। डॉक्टर सूरजमल की दवा से कुछ लाभ हुआ। प्रताप सिंह ने तुरन्त सूरजमल की जगह अलीमर्दान खाँ को इलाज के लिए भेजा। 16 अक्टूबर तक अलीमर्दान खाँ की दवा से ऋषि की हालत तेजी से बिगड़ती चली गई। तेज सिंह प्रतिदिन ऋषि से मिलता था, परन्तु प्रताप सिंह व जसवन्त सिंह एक बार भी नहीं मिले। जब लगा कि ऋषि की मृत्यु हो सकती है, तब उन्हें माउंट आबू भेजा गया।

डॉ. लक्ष्मणदास ने जब ऋषि को देखा, तो तबादले के कारण अजमेर न जाकर ऋषि का इलाज शुरू किया। ऋषि को लाभ हुआ। तीसरे दिन डॉ. लक्ष्मणदास छुट्टी लेने अंग्रेज डॉ. के पास गया, तो कर्नल प्रताप सिंह माउंट आबू आ चुका था। अंग्रेज डॉ. के साथ प्रताप सिंह ने भी डॉ. लक्ष्मणदास को ऋषि का इलाज न करके अजमेर जाने पर बाध्य किया। अंग्रेज डॉ. के इलाज से ऋषि की हालत फिर बिगड़ गई। लक्ष्मणदास के कहने के अनुसार ऋषि को अजमेर ले जाया गया, परन्तु हालत इतनी बिगड़ चुकी थी कि ऋषि बच नहीं पाये।

घटनाक्रम साफ बताता है कि नन्हीं भक्तन, जसवन्त सिंह और प्रताप सिंह तो ऋषि हत्या के मोहरे थे, असली हत्यारा तो अंग्रेज था। जसवन्त

सिंह ऋषिभक्त था और नन्हीं भक्तन उनकी रखैल थी। प्रचार किया गया कि नन्हीं भक्तन ने विष दिलवा दिया, जिससे ऋषि की मृत्यु हो गई, तो नन्हीं भक्तन ऋषि की मृत्यु के बाद भी 26 वर्ष तक राजदरबार में उसी रुतबे के साथ कैसे रही? बौद्धिक दासों को मोहरे ही दिखाई नहीं दिये, तो मोहरों का आका क्या दिखेगा?

* * * * *

33. कुछ मान्यताएँ—

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी की स्पष्ट घोषणा थी कि वे जो कुछ कह रहे हैं, वह सब वेदानुकूल है, वे अपनी तरफ से कुछ नहीं कह रहे हैं। वेद ईश्वरीय ज्ञान है, तो वेद की कोई बात झूठ या सृष्टि नियमों के विपरीत नहीं होगी। यही कारण था कि ऋषि की बातों में अन्तर्विरोध नहीं था और उन्होंने किसी बात पर समझौता नहीं किया। ऋषि के समय में भी और वर्तमान में भी बहुत सारी बातें प्रचारित की जाती हैं, जिनके विषय में ऋषि ने सैद्धान्तिक पक्ष रखा। कुछ विषयों के बारे में चर्चा निम्न प्रकार है—

(क) अवतारवाद— तथाकथित हिन्दू धर्म में इस धारणा को जोर-शोर से प्रचारित किया जाता है कि अमुक महापुरुष अमुक कार्य हेतु ईश्वर का अवतार था अर्थात् अमुक कार्य के लिए परमात्मा ने अमुक महापुरुष के रूप में जन्म लिया। ऋषि दयानन्द ने अवतारवाद का विरोध किया। अवतार लेने के विरोध के दो सैद्धान्तिक कारण हैं— पहली बात यह है कि ईश्वर को सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और सृष्टिकर्त्ता मानते हैं, तो ईश्वर को कोई मानवीय कार्य करने के लिए जन्म लेने की क्या आवश्यकता

है ? जब सृष्टि रचना जैसा महान् कार्य ईश्वर बिना जन्म लिए कर सकता है, तो किसी तुच्छ से मानवीय कार्य के लिए ईश्वर को अवतार लेना पड़ेगा ? दूसरी बात यह है कि ईश्वर सर्वव्यापक है, तो वह किसी शरीर विशेष में सीमित कैसे हो सकता है ? इसलिए ईश्वर अवतार लेता है, यह सरासर सिद्धान्त-विरुद्ध होने से मान्य नहीं है।

(ख) मूर्तिपूजा— ऋषि मूर्तिपूजा के कट्टर विरोधी थे। इस विरोध के भी कुछ सैद्धान्तिक कारण हैं। पहली बात यह है कि ईश्वर के रूप में किसी महापुरुष के चित्र या मूर्ति को मानना सिद्धान्तविरुद्ध है। दूसरी बात यह है कि जिस महापुरुष की मूर्ति की पूजा की जा रही है, वह महापुरुष वर्तमान में नहीं है, उनकी मृत्यु हो चुकी है, क्योंकि जिसका जन्म होता है, उसकी मृत्यु अवश्य होती है। तीसरी बात यह है कि मूर्ति जड़ वस्तु है और जड़ में ज्ञान नहीं होता। जब जड़ मूर्ति कोई भी क्रिया करने में सक्षम नहीं है, तो मूर्ति की पूजा और मूर्ति से कुछ याचना करना निराधार है। निराधार बात या कार्य हम तभी करेंगे, जब नियम-सिद्धान्त या वास्तविकता से मुँह मोड़ लेते हैं अर्थात् नियम-सिद्धान्त के बारे में विचार करना बन्द कर देते हैं। जब विचार करना बन्द कर देते हैं, तो बुद्धि निष्क्रिय हो जाती है। यह स्थिति बुद्धि की जड़ता है। इसलिए ऋषि ने ठीक ही कहा था कि जड़ की पूजा करने से बुद्धि जड़ हो जाती है। जड़ मूर्ति से किसी जीवित व्यक्ति जैसा कार्य करने या होने की आशा करना, यह ऐसा ही है कि किसी से उसके स्वभाव या सामर्थ्य से बाहर के किसी कार्य की आशा करना। यह इस प्रकार की आशा या मान्यता अन्धभक्ति कहलाती है। अन्धभक्ति से तर्कशक्ति समाप्त हो जाती है।

(ग) ग्रह-शान्ति— कुछ पूजा-पाठ, अनुष्ठान आदि करने से किसी के

दूषित ग्रह शान्त हो जाते हैं और ग्रहों के नाराज होने से होने वाले नुकसान को टाला जा सकता है। ऋषि दयानन्द ज्योतिष शास्त्र के गणितीय भाग को तो मानते थे, परन्तु ग्रहों के कुपित या शान्त होने से होने वाले फल के बारे में ज्योतिष शास्त्र के नाम पर फैलाये भ्रम या पाखण्ड को नहीं मानते थे। ग्रहों के कुपित या शान्त होने की बात को न मानने का सैद्धान्तिक आधार यह है कि ग्रह हमें दो तरह से प्रभावित करते हैं—एक तो अपने गुरुत्व प्रभाव से और दूसरे इससे कि कोई ग्रह कौनसे और कितने विकिरणों को परावर्तित, उत्सर्जित या अवशोषित करता है। किसी भी ग्रह की गुरुत्व और विकिरण ये दो बातें धरती पर हमारे किसी अनुष्ठान से प्रभावित नहीं होंगी। यदि यह मान भी लें कि कोई अनुष्ठान कुछ प्रभाव पैदा करता है, तो वह प्रभाव धरती पर रहने वाले प्रत्येक प्राणी के लिए बराबर होगा, तो अमुक अनुष्ठानकर्त्ता के ग्रह शान्त या कुपित होने का क्या अर्थ हुआ? ग्रह जड़ वस्तु है, इसका किसी व्यक्ति विशेष से प्रसन्न या कुपित होना निराधार बात है। इसलिए ग्रह-शान्ति के अनुष्ठान अन्धविश्वास व पाखण्ड के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं।

(घ) पाप-माफी— कोई तीर्थ यात्रा करने, भण्डारा करने, रात्रि भर भजन-कीर्तन करने या कोई अनुष्ठान करने से किसी गलत किये कर्म के फल से बच जायेंगे, ऐसी माफी का प्रावधान लगभग सभी मत-पन्थों में देखने को मिलता है। ऋषि दयानन्द ने सभी मत-पन्थों के रजिस्टर में इन पाप-माफी वाले पृष्ठों पर काटा लगा दिया और स्पष्ट कहा कि किये गये कर्म का फल अवश्य भोगना पड़ेगा, उसको स्वयं ईश्वर भी माफ नहीं करता। ऋषि की इस घोषणा का सैद्धान्तिक आधार ईश्वर की कर्मफल-व्यवस्था है। यदि इस व्यवस्था में थोड़ा सा हेर-फेर होता है, तो कर्मफल की व्यवस्था भंग हो जाती है। क्या ईश्वर अपनी व्यवस्था

को मानव की किसी भी गतिविधि से प्रभावित होकर बदल देगा? कर्मफल-व्यवस्था के अनुसार किये गये कर्म का फल अवश्य भोगना पड़ेगा, यहाँ फल से छूट का कोई प्रावधान नहीं है। हाँ, किसी अनुष्ठान से आप भविष्य में बुरा कर्म न करें, ऐसी प्रेरणा या विचार बन सकता है, परन्तु पहले किये किसी कर्म के फल से माफी सम्भव नहीं है। इस कारण मत-पन्थों में पाप-माफी के लिए किये गये सभी क्रियाकलाप सिद्धान्त-विरुद्ध होने से मान्य नहीं हैं।

(ङ) प्राण-प्रतिष्ठा— प्राणि जगत् (वनस्पति व जीव जगत्) की सब क्रियाएँ प्राणों के माध्यम से होती हैं। जब वनस्पति या जीव की शरीर रचना या व्यवस्था में कोई अवांछित परिवर्तन आ जाता है, तो प्राणों की क्रिया रुक जाती है और हम उस शरीर को मृत घोषित कर देते हैं। मूर्ति जो जड़ लकड़ी, पत्थर, धातु या मिट्टी की बनी है, उसमें ज्यों की त्यों अवस्था में प्राण-प्रतिष्ठा (प्राण डालना) स्वयं ईश्वर भी नहीं कर सकता, तो मनुष्य की तो औकात ही क्या है? जो कार्य स्वयं ईश्वर भी नहीं कर सकता, कोई मनुष्य उसको करने का दावा करे या प्रचार करे, इससे बड़ा ढोंग-पाखण्ड भूतल पर दूसरा नहीं हो सकता। ऐसे ढोंग-पाखण्ड करने वाले महापापी और ऐसे ढोंग-पाखण्ड का शिकार होने वाले महामूर्ख होते हैं।

(च) भूत-प्रेत— भूत का मतलब है— बीता हुआ समय और यह पञ्चमहाभूत (पृथ्वी, जल, आकाश, वायु व अग्नि) वाले भूतों में से कोई भी हो सकता है। मृत शरीर को प्रेत भी कहा है। यहाँ भूत से मतलब है कि कोई आत्मा किसी शरीर को छोड़ने के बाद (मृत्यु के बाद) किसी दूसरे जीवित शरीर में प्रवेश कर जाये, तो वह भूत-प्रेत कहलाती है।

ईश्वरीय व्यवस्था है कि किसी शरीर की मृत्यु होने पर उस शरीर वाली आत्मा को उसके कर्मानुसार दूसरा शरीर मिल जायेगा। यदि यह माना जाये कि दूसरा शरीर मिलने में विलम्ब होने की स्थिति में शरीर से मुक्त हुई वह आत्मा किसी अन्य शरीर में प्रवेश कर जायेगी। तो यहाँ पहली बात यह है कि ईश्वरीय व्यवस्था में कोई अधूरापन नहीं होता। दूसरी बात यह है कि विलम्ब होने पर भी कोई आत्मा अपनी इच्छानुसार किसी में भी प्रवेश नहीं कर सकती। यदि ऐसा सम्भव होता, तो मान लीजिए एक आत्मा ने एक शरीर के माध्यम से पूरी आयु कुकर्म किये और अब शरीर छूटने पर अर्थात् मृत्यु के बाद यदि वह आत्मा किसी शरीर में प्रवेश कर सकती है, तो वह आत्मा किसी ऐसी माँ के गर्भ में प्रवेश करेगी, जहाँ जन्म होने पर फिर ठाठ-बाट का जीवन मिले। इससे ईश्वर की कर्मफल-व्यवस्था भंग हो जायेगी। इसलिए कोई आत्मा भूत के रूप में किसी शरीर में प्रवेश नहीं कर सकती।

(छ) श्राद्ध-तर्पण— मृत्यु के उपरान्त अपने परिजनों को भोजन आदि देना और उनकी आत्मा की सद्गति के लिए कोई अनुष्ठान (भोजन आदि करवाना, पूजा-पाठ करवाना) करना श्राद्ध-तर्पण कहलाता है। यहाँ फिर ईश्वरीय व्यवस्था वाला सिद्धान्त लागू होता है कि एक शरीर छोड़ने पर कर्मानुसार दूसरा शरीर मिल जाता है। कैसा शरीर मिलेगा, यह उसके कर्मों के हिसाब से तय होगा, इस व्यवस्था में हम कुछ भी हेर-फेर नहीं कर सकते। हमारी इच्छा, भावना व कर्मकाण्ड उस दिवंगत आत्मा की स्थिति में कुछ भी परिवर्तन नहीं कर सकते। उसकी गति तो उसके कर्मानुसार होगी, हमारी इच्छा व भावना का कोई योगदान नहीं हो सकता। आत्मा को कर्मानुसार दूसरा शरीर मिल गया, तो हमारा अर्पित किया भोजन उस शरीर को कैसे मिलेगा? यदि शरीर नहीं मिला है, तो

आत्मा शरीर के बिना कुछ नहीं कर सकती, तो बिना शरीर के हमारे भोजन को ग्रहण कैसे करेगी? इस कारण मृत्यु के बाद दिवंगत आत्मा के लिए कुछ भी करना कुछ भी परिणाम लाने वाला नहीं है। हाँ, जीवित परिजनों के लिए हम कुछ करते हैं, तो यह वास्तविक श्राद्ध-तर्पण है।

(ज) शुभ-अशुभ मुहूर्त— किसी समय विशेष या स्थान विशेष को शुभ या अशुभ मानना या बताना निराधार है, क्योंकि समय की एक सेकण्ड भी ऐसी नहीं है, जब उस सेकण्ड विशेष में कुछ शुभ और अशुभ कार्य न हुए हों, तो फिर किसी भी समय को शुभ या अशुभ किस आधार पर मानें? इसी प्रकार धरती पर कोई भी ऐसा स्थान नहीं है, जहाँ अच्छे-बुरे कार्य न हुए हों। इसलिए हम किसी समय या स्थान को शुभ या अशुभ नहीं मान सकते। सभी समय व सभी स्थान सदैव एक जैसे हैं, शुभ-अशुभ हमारे कर्म होते हैं, समय या स्थान नहीं होते, क्योंकि शुभ-अशुभ कार्य सभी समयों व स्थानों में ही होते हैं। इस कारण शुभ-अशुभ मुहूर्त पूछना या निकलवाना एक वहम व अन्धविश्वास के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

(झ) प्रार्थना— क्या ईश्वर प्रार्थना सुनता है? यहाँ ऋषि दयानन्द स्पष्ट करते हैं कि ईश्वर प्रार्थना सुनता है, परन्तु ऋषि कहते हैं कि इसके लिए दो शर्तें हैं। पहली शर्त यह है कि ईश्वर उस प्रार्थना को सुनेगा, जो हमने अपना पूर्ण पुरुषार्थ करने के बाद की है। दूसरी शर्त यह है कि ईश्वर उसी प्रार्थना को सुनेगा, जो किसी अच्छे कार्य के लिए की है। पुरुषार्थ भी हो और कर्म अच्छा हो, तो ऐसे कार्य में ईश्वर की कृपा अवश्य मिलेगी अर्थात् प्रार्थना सुनी जायेगी। कार्य तो अच्छा है, लेकिन हम प्रयास नहीं कर रहे या हम पूरा प्रयास कर रहे हैं, परन्तु कार्य अच्छा

नहीं है, तो प्रार्थना नहीं सुनी जायेगी।

(ञ) काँवड़— किसी मनोकामना की पूर्ति के लिए शिवजी के मन्दिर में गंगाजल लाकर शिवजी की मूर्ति पर डालना काँवड़ लाना कहलाता है। यहाँ दो बातें मानकर काँवड़ पर विचार करेंगे। मान लिया कि शिवजी भोले आज भी जीवित हैं और शिवजी इतने सक्षम देवता हैं कि करोड़ों भक्तों की मनोकामना पूर्ण कर सकते हैं। ये दो बातें मानने पर तीसरी बात अपने आप माननी पड़ेगी कि शिवजी भोले में यह सामर्थ्य भी है कि वे प्रत्येक काँवड़ लाने वाले के बारे में जानते हैं कि कौन कैसा है। काँवड़ लाने के 5-6 दिन छोड़कर 360 दिन का रिकॉर्ड खराब है, तो क्या शिवजी भोले (भोले का मतलब सरलचित्त होना है, मूर्ख नहीं) एक गिलास पानी से खुश हो जायेंगे? एक व्यक्ति काँवड़ नहीं लाया, लेकिन उसका 365 दिन का रिकॉर्ड ठीक है, तो क्या शिवजी देवता (देवता वह जो देता है, किसी से कुछ लेता नहीं) उस काँवड़ न लाने वाले की सहायता नहीं करेंगे? इसलिए देवताओं का आशीर्वाद पाने के लिए अच्छे कार्य करने जरूरी हैं, काँवड़ लाना जरूरी नहीं है।

(ट) पुनर्जन्म— आत्मा तो नित्य है, जो सदैव रहती है। आत्मा तो एक शरीर छोड़ने के बाद भी रहेगी और किसी शरीर में आने से पहले भी होगी। यदि जन्म से पहले थी, तो मृत्यु के बाद भी रहेगी। जन्म के समय किसी पहले शरीर को छोड़कर आई है, तो वर्तमान शरीर को छोड़कर आगे भी किसी और शरीर को धारण करेगी, आत्मा सदैव रहेगी। किसी शरीर को धारण करना जन्म कहलाता है और किसी शरीर को छोड़ना मृत्यु है। जन्म-मृत्यु शरीर का होता है, आत्मा का नहीं। आत्मा का एक शरीर छोड़कर दूसरा शरीर धारण करना पुनर्जन्म कहलाता है।

(ठ) हस्तरेखा— जैसे प्रत्येक के शरीर और चेहरे की बनावट भिन्न-भिन्न होती हैं, उसी प्रकार हाथों की लाइनें (रेखाएँ) भी भिन्न-भिन्न होती हैं। हाथों से कैसा कार्य करते हैं, जीवनशैली कैसी है, ये भी रेखाओं की लम्बाई, गहराई, आकार आदि को प्रभावित करते हैं। कार्य का प्रकार, जीवनशैली और आयु के साथ इन हस्तरेखाओं में बदलाव आता रहता है। इन हस्तरेखाओं का सफलता-असफलता, सुख-दुःख और अच्छे-बुरे से कोई सम्बन्ध नहीं है। इन सबका व्यक्ति के कार्य एवं मानसिकता से सम्बन्ध है। कार्य-कारण के सिद्धान्तानुसार जैसे कर्म होंगे, वैसा ही फल मिलना निश्चित है। किसी हस्तरेखा का इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि एक मिनट के लिए सम्बन्ध मान भी लें, तो बदलाव कर्म से होगा, किसी हस्तरेखा बताने वाले धन्धेबाज के बतलाने से कोई फर्क नहीं पड़ेगा और न ही इससे कोई लाभ होगा। हाँ, अनिष्ट की आशंका जरूर कुछ बढ़ जाएगी, क्योंकि जितने हम अज्ञानी व वहमी होंगे, उतने ही हम हस्तरेखा देखने वाले की निराधार बातों से प्रभावित होकर कर्म चेष्टा को नकारात्मक दिशा में ले जाएँगे।

(ड) तन्त्र-मन्त्र— मन्त्र किसी विचार का नाम है। किसी विचार या वाक्य को रटकर किसी कार्य के सिद्ध होने को मानना, यह तन्त्र कहलाता है। हस्तरेखा देखना, अच्छे-बुरे की भविष्यवाणी करना जैसे धन्धे की तरह किसी वाक्य या शब्द को बिना विचारे रटते रहकर किसी कार्य का सिद्ध होना मानना, आमतौर पर इसे बीज मन्त्र कहते हैं और बीज मन्त्र देकर ठगी का धन्धा चलाया जाता है। बहुत से बाबा व गुरु इस धन्धे को बड़े स्तर पर चलाकर अच्छी ठगी कर लेते हैं। ऐसे बीज मन्त्र देने वाले समय-समय पर होते रहते हैं, जैसे वर्तमान में तथाकथित ब्रह्मऋषि कुमार स्वामी व निर्मल बाबा का धन्धा बहुत अच्छा चल रहा है। किसी

वस्तु को प्राप्त करने के लिए प्रयास व उचित कार्यविधि अपनाकर कार्य करने की जगह किसी शब्द या वाक्य को मशीन की तरह बोलने से कार्यसिद्धि मानना मूढ़ता है। जैसे गन्ने की खेती न करके केवल गुड़-गुड़ रटने से गुड़ की प्राप्ति मानना मूर्खता के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

(ढ) जादू-टोना— किसी कार्यसिद्धि के लिए कोई शॉर्टकट, बिना परिश्रम का उपाय ढूँढना, किसी कठिन कार्य को तुरन्त कर देने की भ्रमित विधि को मानना जादू हुआ। किसी कार्यसिद्धि के लिए चौराहे या श्मशान जैसे स्थान पर कुछ रख देना या कोई संकेत बना देना टोना कहलाता है। किसी कार्य के होने के लिए लाल-पीला धागा शरीर के किसी भाग पर बाँध लेना या उस धागे के साथ किसी वस्तु को बाँध लेना गंडा-ताबीज कहलाता है। जादू-टोना, गंडा-ताबीज ये सब भी निराधार उपाय व निरर्थक बातें हैं, इनका कुछ भी प्रभाव नहीं होता। इसी प्रकार और भी बहुत से ठगी के धन्धे अनजान आमजन को भ्रमित करके उनका शोषण करने के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं।

(ण) नशाखोरी— नशाखोरी भी एक अन्धविश्वास है। यह एक मनोवैज्ञानिक अन्धविश्वास है और इस अन्धविश्वास को बढ़ावा देने वाले अर्थशास्त्री व राजनेता हैं। सभी अन्धविश्वासों के कार्य सिद्धान्त एक जैसे होते हैं, जिसमें आमजन की नासमझी और चालाक व धूर्त लोगों की आमजन का शोषण करने की बदनीयत आधारभूत है। तथाकथित मनोवैज्ञानिक किसी भी नशे का, जो एक मानसिक कमजोरी है और कुसंगत का परिणाम है, यह कहकर समर्थन कर देते हैं कि नशे से तनाव में कुछ कमी आ जाती है, नींद आ जाती है, कुछ भूल पड़ जाती है, भूख लगती है आदि। शराब लीवर को कमजोर करती है, कमजोर लीवर के

साथ अच्छी भूख नहीं लग सकती। भूख व नींद का सम्बन्ध शारीरिक परिश्रम से है। तनाव दूर करने के लिए तनाव के कारण को हटाना है, न कि नशे द्वारा कुछ समय के लिए शरीर व दिमाग को शून्य कर देना। शरीर व दिमाग के कमजोर होने से तनाव बढ़ेगा, घटेगा नहीं।

नशाखोरी का मुख्य कारण कुसंगत व नशे की उपलब्धता है। नशे को उपलब्ध करवाने की एकमात्र जिम्मेदारी राजनेताओं की है। वर्तमान में राजनीति जनहित का साधन न होकर मात्र एक धन्धा रह गई है। किसी भी धन्धे के चलते रहने के लिए ग्राहक होना आधारभूत शर्त है। राजनीति का धन्धा वोटों से चलता है। यदि वोटर नासमझ है और आसानी से मूर्ख बनाया जा सकता है, तो वोट लेना आसान हो जाता है। मूर्खता के लिए आर्थिक व शारीरिक रूप से कमजोर होना बड़े सहायक कारक हैं, तो लोगों को नशे की लपेट में लेना आवश्यक है। किसी भी अन्धविश्वास के पीछे किसी भ्रमित करने वाले जुमले का होना आवश्यक है। नशाखोरी को बढ़ाने व बनाए रखने के लिए कुतर्क दिया जाता है कि इससे राजस्व प्राप्त होता है, जिससे आमजन की भलाई के लिए विकास कार्य होते हैं। वैसे तो सभी प्रकार के नशे सभी प्रकार से हानिकारक हैं, परन्तु शराब का नशा सबसे ज्यादा और विशेषकर देहात की जिन्दगी को बर्बाद करने वाला है।

राजस्व के तर्क को थोड़ा गहराई से देखें, तो यह तथ्य सामने आएगा कि शराब से 100 रुपये के राजस्व के पीछे शराब से होने वाली हानि लगभग 114 रुपये है। कमोबेश यही अर्थशास्त्र प्रत्येक नशे का है। इस नकारात्मक अर्थशास्त्र के होते हुए भी नशे के कारोबार के पीछे एक ही कारण बचता है कि आमजन नशे की चपेट में आकर आर्थिक व शारीरिक

और परिणामस्वरूप बौद्धिक रूप से कमजोर रहे और राजनेताओं के लिए आसान वोटर बना रहे। लोग नशे की चपेट में आकर किसी न किसी बीमारी का शिकार होंगे और दवा उद्योग के स्थायी ग्राहक बनेंगे। दवा उद्योग का भी धन्धे वाली राजनीति के साथ गठजोड़ है। यह कठोर सच्चाई है कि नशाखोरी व हरामखोरी किसी व्यक्ति, समाज व राष्ट्र को बर्बाद करने व गुलाम बनाने के लिए काफी हैं।

वेद की बातें सिद्धान्तसम्मत हैं। सिद्धान्त को मानना सुखदायी है और सिद्धान्तविरोधी आचरण दुःख देने वाला होता है, तो वेदानुकूल व्यवहार व क्रियाकलाप जीवन को समृद्ध व सुखी बनायेगा और वेदविरुद्ध या यूँ कहें कि सिद्धान्तविरुद्ध कार्य करना दुःख देगा। यहाँ जिन बातों की चर्चा की है, वे सब सिद्धान्तविरुद्ध होने से जीवन को दुःख ही देंगी, इनसे लाभ कुछ नहीं होगा। वेद की बातें और उनके अनुसार जीवनशैली ही सुख का आधार है।

* * * * *

वेद-रक्षार्थ मार्मिक निवेदन

वैदिक सनातन विचारधारा विश्व की सर्वश्रेष्ठ, सनातन एवं सर्वहित-कारिणी विचारधारा है। सृष्टि के आदि से लेकर महाभारत काल पर्यन्त वैदिक सत्य सनातन धर्म संसार के मनुष्यों का एकमात्र धर्म रहा। महर्षि ब्रह्मा, भगवान् मनु, महाराजा इक्ष्वाकु, महाराजा हरिश्चन्द्र, भगवान् शिव, भगवान् श्रीराम, भगवान् श्रीकृष्ण, महर्षि परशुराम, महर्षि वसिष्ठ, महर्षि अगस्त्य, महर्षि भरद्वाज, महर्षि विश्वामित्र, महर्षि वाल्मीकि, महर्षि व्यास, महावीर हनुमान, महर्षि पतञ्जलि, महर्षि ऐतरेय महीदास, कणाद, कपिल जैसे दिव्य पुरुषों, भगवती उमा, देवी सीता, सती अनसूया, देवी लोपामुद्रा, देवी रुक्मिणी, गार्गी, अपाला जैसी महिमामयी नारियाँ इस वैदिक धर्म की ही देन हैं। वेद प्रतिपादित धर्म (भौतिक व पदार्थ विज्ञान) के कारण सम्पूर्ण आर्य्यावर्त सम्पूर्ण विश्व में सर्वोच्च शिखर पर प्रतिष्ठित था। सम्पूर्ण विश्व भी सुखी, सम्पन्न एवं आध्यात्मिक उन्नति से परिपूर्ण था। भगवान् श्रीराम का राज्य, जहाँ किसी प्राणी को किसी प्रकार का कोई दुःख नहीं था, आज तक संसारभर में विख्यात है।

क्या आप जानते हैं कि इस सबका कारण क्या था? इसका उत्तर वर्तमान काल में केवल ऋषि दयानन्द सरस्वती ने दिया और कहा कि भूमण्डल की सम्पूर्ण उन्नति एवं ज्ञान-विज्ञान व तकनीक की पराकाष्ठा का मूल कारण था— वेद। सभी मनुष्य वेदों के विद्वान् एवं तदनुसार आचरणवान् होते थे। सम्पूर्ण विश्व में ज्ञान-विज्ञान का विस्तार आर्य्यावर्त से ही हुआ। दुर्भाग्य से महाभारत काल से पूर्व ही आर्य्यावर्त के साथ-साथ विश्व में मनुष्यों के सत्त्वगुण का ह्रास होते जाने के कारण वेदविद्या

का भी अत्यधिक ह्रास होने लगा। इस कारण वैदिक सनातन धर्म विद्रूप हो गया। इसके नाम पर पशुबलि, नरबलि, मांसाहार, रंगभेद, छुआछूत, मदिरापान, अश्लीलता आदि पापों का प्रचलन हो गया। इसके प्रतिक्रिया-स्वरूप चार्वाक, बौद्ध, जैन आदि मतों का प्रादुर्भाव हुआ। चार्वाक मत नितान्त भोगवादी था, परन्तु जैन व बौद्ध मतों के प्रवर्तक पवित्रात्मा होने के कारण सदाचार के पथिक बने, लेकिन महात्मा बुद्ध की मृत्यु के पश्चात् बौद्ध मत वैदिक धर्म का प्रबल विरोधी एवं वैदिक साहित्य का विध्वंसक बन गया।

ऐसे अन्धकार भरे काल में कुमारिल भट्ट एवं आद्य शंकराचार्य जैसे महापुरुषों ने वैदिक सनातन धर्म को आर्य्यावर्त में पुनः प्रतिष्ठित करने का बीड़ा उठाया, परन्तु आचार्य शंकर की महती प्रज्ञा से घबराकर वेदविरोधियों ने छल से उन्हें विष दे दिया और इस अद्भुत प्रत्युत्पन्नमति सम्पन्न शास्त्रार्थ समर के योद्धा को भारतभूमि से विदा कर दिया। इनके जाने के पश्चात् इनके अनुयायी भी इनके मन्तव्यों को अच्छी प्रकार समझ नहीं पाये और स्वयं को ब्रह्म मानकर कमण्डलु लेकर मिथ्या वैरागी भिक्षोपजीवी बनकर रह गये। उधर बौद्ध व जैन मतों के द्वारा अहिंसा की मिथ्या परिभाषा के प्रचार से क्षत्रिय भी क्षात्रधर्म भूलकर कायर वा शस्त्रास्त्र-विहीन बन गये।

उधर विश्व के अन्य देशों में पारसी, यहूदी, ईसाई व इस्लाम आदि मत भी प्रचलित होने से सम्पूर्ण विश्व में नाना पापों, दु:खों, अशान्ति व अराजकता का ताण्डव होने लगा। ऐसे दुष्काल में गुरु नानकदेव, संत कबीर, संत रविदास, संत ज्ञानेश्वर आदि ने अपने-अपने स्तर पर समाज को दिशा देने का प्रयास किया, परन्तु वेदविद्या का पूर्ण प्रकाश न होने से

ये सभी महापुरुष काल की क्रूर गति को रोक नहीं पाये, बल्कि नये-नये सम्प्रदाय और उत्पन्न हो गये। वेद का नाम लेने वाले कथित ब्राह्मणों ने अन्य वर्णों एवं महिलाओं को वेद पढ़ने से ही वंचित कर दिया और स्वयं भी वेद के नाम पर मात्र कर्मकाण्डोपजीवी होकर रह गये। पशुबलि, नरबलि, मांसाहार, मदिरा सेवन, छुआछूत, नारी शोषण, बाल विवाह, जैसे पाप वैदिक कर्मकाण्ड के नाम पर प्रचलित थे। उधर देश के क्षत्रिय राजा मूर्तिपूजा व फलित ज्योतिष के भ्रमजाल में फँसकर तथा पारस्परिक फूट के कारण विदेशी आक्रान्ताओं से पराजित होने लगे और विदेशी लुटेरे हमारे घर में शासक बन गये। उन्होंने हमारा धन लूटा, हमारे साहित्य को जलाया, तो अंग्रेज उसे लूटकर वा चुराकर अपने देश ले गये। इस प्रकार संसार में हमारा शिरोमणि देश दीन-हीन हो गया। ऐसे समय में इस भारतभूमि में ऋषि दयानन्द जैसे दिव्य पुरुष ने जन्म लिया। उन्होंने वेदविद्या को भुला देना ही, अपने देश के ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व के अध:पतन का कारण माना।

इस कारण उन्होंने सम्पूर्ण क्रान्ति का बिगुल बजाने का संकल्प लिया। स्वराज्य का प्रथम उद्घोष किया, सामाजिक दुरितों के विरुद्ध शंखनाद किया, परन्तु उनके सब कार्यों में से सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य था— वेदोद्धार करना। उन्होंने मध्यकालीन वेदभाष्यकारों के भाष्यों के दोषों को दर्शाते हुए वेद की यथार्थ भाष्य शैली, जो वेद के वेदत्व का संकेत दे सकती थी, को संसार के सम्मुख प्रस्तुत किया। दुर्भाग्यवश ऋषि दयानन्द का जीवन बहुत छोटा रहा, विधर्मियों ने उन्हें भी संसार से विदा कर दिया। इस कारण उनका वेदभाष्य बहुत ही संक्षिप्त व सांकेतिक रह गया।

यही कारण था कि उनके अनुयायी आर्य विद्वान् भी उसे पूर्णतः नहीं समझ पाये और जो शेष वेद का भाष्य इन विद्वानों ने किया, उसमें भी अनेकत्र वही दोष आ गये, जो सायण, महीधर, स्कन्दस्वामी आदि के भाष्यों में विद्यमान थे। आर्यसमाज ने इस देश में स्वाधीनता संग्राम के साथ समाज सुधार के अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किये। किसी भी संस्था-संगठन वा सम्प्रदाय से अधिक बलिदान आर्यसमाज ने दिये, परन्तु वेद के अपौरुषेयत्व तथा सर्वविज्ञानमयत्व की सिद्धि की दिशा में विगत डेढ़ सौ वर्ष में भी आर्यसमाज कोई कार्य नहीं कर पाया। आर्यसमाज सदैव शास्त्रार्थ-समर का एकछत्र विजेता भी रहा, परन्तु वेद के यथार्थ विज्ञान के बिना यह विजय अधूरी है।

आज परमपिता परमात्मा ने पूज्य आचार्य अग्निव्रत के रूप में हमें पुनः एक अवसर दिया है। भीनमाल, राजस्थान से 10 कि.मी. दूर एक छोटे से ग्राम में रहकर आचार्य श्री वेदों का वास्तविक स्वरूप संसार के समक्ष रखने का प्रयास कर रहे हैं। इस प्रयास में पहले आपने ऋग्वेद को समझाने वाले उसके ब्राह्मण ग्रन्थ ऐतरेय ब्राह्मण, जिसे लगभग सात हजार साल पुराना माना जाता है, का वैज्ञानिक (वस्तुतः वास्तविक) भाष्य वेदविज्ञान-आलोकः (लगभग 2800 पृष्ठ) के रूप में विश्व में पहली बार किया है। यह ग्रन्थ सृष्टि विज्ञान के ऐसे अत्यन्त गम्भीर व अनसुलझे रहस्यों का उद्घाटन करता है, जिनके बारे में विज्ञान की वर्तमान पद्धति से सैकड़ों वर्षों में भी नहीं जाना जा सकेगा।

इसके पश्चात् आचार्य श्री ने वेदों को समझने के लिए वैदिक पदों की व्याख्या करने वाले एक अनिवार्य ग्रन्थ महर्षि यास्क विरचित निरुक्त का वैज्ञानिक भाष्य 'वेदार्थ-विज्ञानम्' (लगभग 2000 पृष्ठ) के रूप में

संसार के सामने प्रस्तुत किया। इस ग्रन्थ में आचार्य श्री ने सैकड़ों मन्त्रों का भाष्य किया, किसी मन्त्र का एक, किसी का दो, तो किसी का तीन प्रकार का भाष्य किया है। उदाहरणार्थ 'विश्वानि देव...' मन्त्र का 16 प्रकार का भाष्य कर आचार्य श्री ने यह सिद्ध किया है कि किसी भी वेद मन्त्र के अनेक प्रकार के भाष्य सम्भव हैं, जैसा कि तैत्तिरीय ब्राह्मण 3.10.11 में कहा है—

'अनन्ता वै वेदाः'

अर्थात् वेदों में अनन्त ज्ञान है। ये दोनों ग्रन्थ आर्यसमाज ही नहीं, अपितु सनातन धर्म के गौरव हैं और हमें गर्व है कि हमारे मध्य में आचार्य श्री के रूप में अभी भी ऐसे वैज्ञानिक (वर्तमान की भाषा में) विद्यमान हैं, जो हमें हमारे मूल वेद, ईश्वर, धरती माँ और गौ माता से जोड़ते हैं। यह एक अकाट्य सत्य है कि जो अपने मूल से कट जाता है, वह नष्ट हो जाता है और यही हो भी रहा है। वेद और ईश्वर से दूर जाता यह संसार निरन्तर विनाश की ओर बढ़ता जा रहा है।

समाधान एक ही है— हमें आचार्य श्री के इस दुष्कर कार्य में अपना अधिक से अधिक सहयोग करना होगा, नहीं तो समय निकलने के पश्चात् हमारे पास पछताने के अलावा कुछ नहीं बचेगा। भारत के डी.आर.डी.ओ., इसरो से लेकर नासा, सर्न तक व नोबेल पुरस्कार विजेता तक कितने ही वैज्ञानिकों ने आचार्य श्री के अनुसंधान कार्य का लोहा माना है अथवा वर्तमान विज्ञान के सिद्धान्तों पर उठाये प्रश्नों से अभिभूत हुए वा निरुत्तर हुए हैं। जिस कार्य में वैज्ञानिकों को अरबों-खरबों डॉलर खर्च करने के बाद भी सफलता नहीं मिली, वह कार्य आचार्य श्री ने अत्यल्प संसाधनों में एक छोटी सी जगह पर रहकर और विपरीत परिस्थितियों में अनेक

प्रकार के विरोधों को सहन करते हुए भी कर दिखाया है। इसके पश्चात् आचार्य श्री की योजना वेदों के ऐसे सूक्तों का भाष्य करने की है, जिनका भाष्य अत्यन्त कठिन है या जिनमें विज्ञान के गम्भीर रहस्य छुपे हुए हैं।

इसलिए हमारा यह कर्त्तव्य बन जाता है कि वैदिक विज्ञान के इस महान् यज्ञ में हम अपनी पवित्र आहुति अवश्य प्रदान करें और परमपिता परमात्मा के आशीर्वाद के पात्र बनें। इसके अतिरिक्त वेद, वैदिक धर्म और राष्ट्र को बचाने का अन्य कोई मार्ग नहीं है।

निवेदक— विशाल आर्य व डॉ. मधुलिका आर्या,
प्राचार्य व उप-प्राचार्या,
आधुनिक एवं वैदिक भौतिकी शोध संस्थान
(श्री वैदिक स्वस्ति पन्था न्यास द्वारा संचालित)
भीनमाल (राजस्थान) 343029

जय माँ वेद भारती

/vaidicphysics

मेरा संक्षिप्त परिचय

मेरा जन्म हरियाणा के चरखी दादरी जिले के गाँव रावलधी में एक साधारण किसान परिवार में सन् 1947 के सितम्बर माह में हुआ। आठवीं कक्षा तक गाँव, हायर सेकेण्डरी तक चरखी दादरी और प्री इंजीनियरिंग दयानन्द कॉलेज हिसार से किया। बी.एससी. ऑनर्स व एम.एससी. फिजिक्स कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय से 1971 में किया। 1972 से 1975 तक 'टैक्यॉन पार्टिकल फील्ड' विषय में भौतिकी के प्रसिद्ध प्रोफेसर बी.एस. राजपूत जी के निर्देशन में पीएच.डी. के लिए कार्य किया। पीएच.डी. का कार्य कुछ समय बाद पूरा हो जाता, लेकिन जून 1975 में आपात स्थिति लागू हो गई और डॉ. राजपूत जी को जेल जाना पड़ा, क्योंकि वे आर.एस.एस. से सम्बन्ध रखते थे। मुझे भी यूनिवर्सिटी से बोरिया-बिस्तर समेटना पड़ा, क्योंकि मैं आर्यसमाज के संन्यासी स्वामी इन्द्रवेश व स्वामी अग्निवेश जी से निकटता से जुड़ा हुआ था।

मेरे दादा जी को पोते की शादी का बहुत चाव था, इसलिए मेरी शादी 1963 में, जब मैं आठवीं कक्षा में था, कर दी गई। मेरी पढ़ने की तीव्र इच्छा थी, तो मैं पढ़ाई कर सका। 1978 से 2004 तक कॉलेज में अध्यापन कार्य किया। 2004 में राजकीय पी.जी. कॉलेज, भिवानी से एसोसिएट प्रोफेसर के पद से सेवानिवृत्त हुआ। पीएच.डी. का कार्य बीच में छूट गया था, जो मुझे महसूस होता था, तो मैंने इस कार्य को आई.आई.टी. दिल्ली से मेरे मित्र प्रोफेसर राजपाल जी दहिया के निर्देशन में 1997 में पूरा किया।

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में डॉ. राजपूत जी के कारण आर.एस.एस. के लोगों के साथ, अनेकों कम्युनिस्ट प्रोफेसर और मित्रों के साथ वाद-विवाद होता रहता था, क्योंकि मैं स्कूल में अध्ययन के समय से ही आर्यसमाज के सम्पर्क में रहा था। आर.एस.एस. के स्वामी विवेकानन्द, कम्युनिस्टों के कार्ल मार्क्स और आर्यसमाज के स्वामी दयानन्द सरस्वती के बारे में गहराई से जानने व समझने की इच्छा रहती थी।

मैं बहुत कुछ अध्ययन, चर्चा-परिचर्चा और कार्यों के परिणाम देखकर इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि ऋषि दयानन्द की विचारधारा ही सही समाधान है। मेरा जीवन बहुत संघर्ष भरा रहा है, जो कुछ कर पाया, वह मेरे पिताजी व माताजी के आशीर्वाद का परिणाम है, क्योंकि वे दोनों बहुत उच्च भावनाओं के व्यक्ति थे।

डॉ. भूपसिंह

thevedscience.com

द वेद साइंस पब्लिकेशन

ISBN 978-81-976604-0-5